# 'अभिनव कथाकार मिश्र जी की दृष्टि में समसामयिक समाज'

**अशोक कँवर शेखावत**

राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड (राज.)

---

## शोध सारांश

*'कवयः क्रान्तदर्शिनः अर्थात् कवि, देश व काल की सीमाओं से परे जाकर सत्य का साक्षात्कार करता है, वह सीमाओं में आबद्ध होकर नहीं रह सकता। अन्तः सत्ता के साक्षात्कार की सहज प्रक्रिया में वह, जो महसूस करता है, वह सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक उपादेयता को धारण करता है। यही कारण है कि त्रिकालदर्शी कवि के काव्य की उपादेयता तथा उसकी प्रासंगिकता सदैव बनी रहती है। किसी भी काव्य की उपादेयता अथवा प्रासंगिकता ही उसके चिरंजीवी होने का आधार हैं।, जो समय के साथ अप्रासंगिक हो जाता है, उसे छोडना ही होता है तथा जो प्रासंगिक है, उसे धारण करना ही होता है। अभिराज राजेन्द्रमिश्र का कथा-साहित्य प्रासंगिकता अथवा उपादेयता की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता है। उनकी कथाएं कालखण्ड की सीमाओं को चीरते हुए प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय बन जाती हैं। अनादिकाल से प्रवाहित संस्कृत साहित्य की काव्य परम्परा के मौलिक स्वरुप को अक्षुण्ण बनाए रखते हुए उन्होंने वर्तमानकालीन समस्याओं को कथाओं की विषय वस्तु बनाया है। नवीन समय, नवीन दृष्टिकोण, नवीन समस्याएं तथा नवीन समाधान उनके साहित्य को समसामयिक दृष्टि से अमूल्यता प्रदान करते हैं। उनकी कथाओं की सर्वोत्तम विलक्षण क्षमता उनकी प्रासंगिकता, सामयिकता अथवा उपादेयता ही है। समकालीन समाज की ऐसी कोई समस्या अथवा विषय नहीं है, जिसे उन्होंने अपनी कथाओं का विषय न बनाया हो और उसका आदर्श समाधान प्रस्तुत न किया हो। सामयिक दृष्टि से उचित, परन्तु पुरातन जीवन मूल्यों की विरासत के समन्वय के साथ अद्भुत है, उनकी कथाओं में विद्यमान समाधान। अधुनातन समाज के भीतर के द्वन्द्व को, उसकी व्यथा को, उसके प्रश्नों को तथा उसकी समस्याओं को उनकी कथाओं में समाधान एवं विश्रान्ति प्राप्त होती है। कविराज की कथाओं में प्राचीन जीवन मूल्यों, नैतिक मर्यादाओं, संस्कृतिक परम्पराओं एवं समसामयिक अपेक्षाओं में अद्भुत समन्वय है। वे आँख बन्द करके प्राचीन एवं अप्रासंगिक परम्पराओं का अनुसरण नहीं करते, परन्तु मर्यादा का उल्लंघन भी कदापि नहीं करते। कथाओं मे नवीन एवं प्राचीन के ग्राह्य विषयों को शिरोधार्य करके अप्रासंगिक को विनम्र अस्वीकृति प्रदान करते हैं। अधुनातन समाज एवं अधुनातन समस्याएं उनकी कथाओं का कथ्य है। न तो वे आधुनिकता के नाम पर पुरातन गरिमामयी परम्पराओं का त्याग करते हैं और न ही प्राचीन विरासत के नाम पर व्यर्थ लकीर पीटने का कार्य करते हैं। नवीन युग की समस्याओं एवं नवीन विचाराधारा को उदारमना कवि, हृदय से स्वीकार करते है। अभिराज राजेन्द्रमिश्र का कथा-साहित्य उनकी अन्तश्चेतना का लोक की अन्तश्चेतना से साक्षात्कार है। उनकी कथाओं में लोक की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। अभिराजीय कथासंसार में सम्पूर्ण चराचर जगत का प्रकाशन है। उनका काव्य आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक जगत की व्याख्या है। राधावल्लभ जी के 'लोकानुकीर्तनं काव्यं' की कसौटी पर मिश्र जी पूर्णरूपेण खरे उतरते हैं।*

---

अर्वाचीन संस्कृतसाहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र की लेखनी साहित्य की सभी विधाओं मे अपने शब्दशिल्प एवं भावशिल्प की उत्कृष्टता के साथ सर्वोच्च शिखर पर विराजमान है। अदभुत काव्य-क्षमता एवं विलक्षण व्यक्तित्व के धनी मिश्र जी अपनी सहज भावसंप्रेषणीयता से अभिनव-कालिदास प्रतीत होते हैं, तो कहीं अपने उत्कृष्ट शब्दशिल्प से अभिनव-बाण के रूप में अवतरित हो उठते हैं। वाङ्मय का दृश्य स्वरूप हो अथवा श्रव्य, मिश्र जी की लेखनी निद्वन्द्व एवं निर्बाध रूप से श्रेष्ठता के शिखर पर विराजमान हैं।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं की विषयवस्तु, उनके पात्र, संवाद एवं वातावरण नवीन समयानुकूल नवीनता लिए हुए हैं, परन्तु उनका उद्देश्य समकालीन समस्याओं को समाज के समक्ष रखना, समाज को उस विषय में सोचने के लिए विवश करना एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य में उनका उचित समाधान करना है। अप्रासंगिक हो चुकी पारम्परिक श्रृंखलाओं को

तोड़ते हुए भी अभिराज राजेन्द्रमिश्र स्वप्न में भी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करते।

कविवर ने अधुनातन समाज में यत्र-तत्र सर्वत्र व्याकुलता प्रदान करने वाली सामाजिक विसंगतियों पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए उन्हें सुसंगतियों में परिवर्तित करने का मांगलिक प्रयास किया है। कविवर ने समाज में विद्यमान लिंगभेद, कन्याभ्रूण-हत्या, वेश्यावृत्ति, विधवादुर्दशा, वन्ध्यावस्था, यौन-दुराचार, बालविवाह, पुनर्विवाह, जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था, भ्रष्टाचार, धर्मान्धता, पलायनवाद, अन्तजातीय व अन्तर्देशीय-विवाह, प्रेमविवाह, नैतिक-अवमूल्यन, सामाजिक-चरित्र, लावारिस-शिशु, पर्यावरण आदि समस्त विषयों को उन्होंने अपनी कथाओं की विषयवस्तु में पिरोया है।

तथाकथित नारी सशक्तीकरण के अनेक दावों के बावजूद समाज में नारी की स्थिति दूसरे स्थान पर है। आज भी उसे भोग्या दृष्टि से देखा जाता है, वस्तु की तरह उपभोग में लिया जाता है, शिक्षा में लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है, विवाह में उनकी इच्छा को महत्ता नहीं दी जाती है। जिजीविषा की तपती शिक्षित है, आजीविका चाहती है, परन्तु समाज उसके यौवन को प्रतिफल के रुप में चाहता है। तपती जैसे उदाहरण समाज में हजारों की संख्या में मिल सकते हैं। तपती की पीड़ा आज की आजीविका चाहने वाली अधिकांश स्त्री समाज की पीड़ा है-

'न कुत्रापि गुण शिक्षाशीलमूल्यम्। सर्वत्रैव यौवनमूल्यम्

यौवनादृते किमन्यदासीत् तदर्हत्वम्।'[1]

समसामयिक परिप्रेक्ष्य में लैंगिक संतुलन की बिगड़ती स्थिति सम्पूर्ण समाज एवं प्रशासन के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ है। लैंगिक संवेदनशीलता जाग्रत करने के लिए सरकार हर स्तर पर कार्य कर रही है। एक जिम्मेदार साहित्यकार के रुप में कवि ने जनचेतना जाग्रत करने की दिशा में अपनी कथाओं को सशक्त शस्त्र की तरह माध्यम बनाया है। कविवर की शतपर्विका कहानी कन्या सन्तति की उपेक्षा व उसकी पीड़ा को उठाते हुए इस संदेश को वहां तक ले जाती हैं कि पुत्रियां-पुत्रों की तरह ही सेवाभावी एवं पारिवारिक संस्कारों को आगे ले जाने वाली होती हैं। पुत्र प्राप्ति की कामना में सात पुत्रियों का पिता बना रामलाल अपनी बेटियों को अपने दुर्भाग्य का कारण मानता है, उनका तिरस्कार करता है, परन्तु पुत्री की सेवा शुश्रूषा से उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। यह रामलाल का हृदय परिवर्तन पूरे समाज का हृदय परिवर्तन है। वह पश्चाताप करता है-

'मया नृशंसेन पुत्रलोभवशात् स्वकन्यकाः भृशं समुपेक्षिताः ..... यदि नाम मत्कन्यकाः प्रारम्भादेव मद्वात्सल्यलालिता अभविष्यत् अवश्यमेवासां सद्गुण विकाशोऽभविष्यत्।'[2]

स्त्री को भोग्या अथवा उपभोग की वस्तु समझने के कारण समाज में जो विकृतियां आई उनमें से एक है वेश्यावृत्ति। समाज में स्त्री की उपयोगिता एवं महत्ता उसके सौन्दर्य एवं शारीरिक सुगढ़ता से मानी जाती है। समाज की दृष्टि सर्वप्रथम उसके शारीरिक अस्तित्व पर होती है। भोग-लोलुप मनुष्य समाज में एकाधिक स्त्रियों के साथ समागम चाहता है। इस विकृत मानसिकता का ही परिणाम है यह देह व्यापार अथवा वेश्यावृत्ति। जब किसी स्त्री को कुछ चाहिए होता है तब उसके बदले में समाज की दृष्टि उसके रूप एवं सौन्दर्य पर होती है। विवशता में स्वयं अथवा दूसरों के द्वारा बाध्य किये जाने पर किसी भी प्रकार से प्राचीन काल से ही वेश्यावृत्ति समाज में अपना अस्तित्व बनाए हुए है। कवि कहते हैं- 'भारते यथा दिव्योद्भवा भाषा, दिव्योद्भवं नाट्यं, दिव्योद्भवो नृपतिश्श्रूयते सर्वथा तथैवं वेश्यावृत्तिरपि दिव्योद्भवा।'[3]

समकालीन समाज में भी बदले हुए रूप में वेश्यावृत्ति ही चल रही है। इस तथ्य को इंगित करते हुए कविवर कहते हैं- 'तत्कृते समाजेऽन्ये सदुपाया इदानीं प्रचलिताः। धनकुबेरैर्मुम्बईकलिकातादिमहानगरेषु पतारका बहुभूमिका विश्रामालयाः स्थापिता यत्र..... अभिजातकुलोत्पन्नाः कन्यकाः कलाप्रदर्शनव्याजेन नृत्यन्ते। पुराचीनैव मदिराऽभिनवेषु गोलकेषु वर्तत इतिदिक्।'[4]

समसामयिक परिप्रेक्ष्य में मतलोलुपता के कारण बढ़ता जातीय संघर्ष अथवा साम्प्रदायिक वैमनस्य सामाजिक संरचनागत स्वरुप के लिए एक बड़ा खतरा बन गया है। सामाजिक सद्भाव घट रहा है। आरक्षणादि उपायों से वर्ग संघर्ष घटने के बजाय बढ़ रहा है और जिसे प्रयास करना चाहिए, उसे रोकने का, वही इसे निजी स्वार्थों अथवा सत्ता लोलुपता के कारण बढ़ा रहा है। इसे संकेतित करते हुए कविवर कहते हैं-'अर्थसाम्यप्रयासापेक्षया हृदयसाम्यस्थापनप्रयासः सुकरः उपादेयश्च प्रतिभाति। हन्त, तदेव कार्यं शासनेन, न च क्रियते।'[5]

कविवर सावचेत हैं इस तथ्य से कि प्रशासनिक प्रयासों की शिथिलता के बावजूद समय के साथ अपेक्षित प्रशंसनीय प्रयास हो रहे हैं, परिणाम दिखाई दे रहा है। जाति की अपेक्षा गुणों से पहचान मानवीय है और वह हो रहा है- 'पुरावृत्तमिदं जातम्। सम्प्रति समुज्रृम्भते नूतनस्समाजो यत्र मानवः स्वगुणैरेव प्रतिष्ठितो, न पुनः स्वजात्या।'[6]

वैधव्य, बलात्कार, परित्यक्तावस्था न केवल प्राचीन समाज, अपितु अर्वाचीन समाज में भी एक जीते जागते मनुष्य के जीवन का अन्त है। विधवा विवाह अथवा पुनर्विवाह के प्रति उदार-दृष्टिकोण एवं सहृदयता ही इस सामाजिक विकृति का समुचित निराकरण है। जिस धर्म, परम्परा एवं संस्कृति के नाम पर स्त्री पर पुनर्विवाह की वर्जना की परिकल्पनाएं थोपी जाती हैं, अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने उन्हीं शास्त्रीय एवं धार्मिक मान्यताओं के सशक्त प्रमाणों से विधवा विवाह अथवा पुनर्विवाह का मार्ग प्रशस्त कर कांटे से कांटा निकालने का साहसिक प्रयास किया है। बलात्कार से, परित्याग से, अपहरण से अथवा पति की मृत्यु के कारण स्त्री त्याज्य नहीं है। वह वस्तुत पवित्र ही है, वरेण्य है। वे कहते हैं-

'न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते।

पुष्पमासमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति।'[7]

दहेज, जो वस्तुतः अपने मूलस्वरुप में एक पिता के द्वारा अपनी पुत्री को आशीर्वाद, स्नेह एवं स्मृतिचिह्न के रुप में दिया जाने वाला उपहार था, न जाने कब वरपक्ष के अधिकार के रुप में परिणत हो गया, कह नहीं सकते। समस्त वैधानिक प्रयासों एवं सामाजिक जागरुकता के बाद भी दहेजप्रथा सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती ही जा रही है। उसका एकमात्र समाधान है युवा पीढ़ी विवेकशीलता के साथ कृतसंकल्प हो कि वे गुण, कर्म, रुचि, योग्यता, संस्कार, आचरणगत समानता के आधार पर अपने जीवन साथी का चयन करेंगे। चित्रपर्णी की लघुकथाएं जामाता एवं गौर्यावरः इसका दृष्टान्त हैं, जिसमें वर विनम्रतापूर्वक केवल कन्या का हाथ मांगते हैं और उन परिवारों की खुशियां लौट आती है।

सनातन वैदिक परम्परा में प्रकृति की जिन अलौकिक शक्तियों को देवत्व के रुप में स्थापित किया है, वे समस्त जङ्जंगम की श्रृंखला को संतुलित रखने के लिए अनिवार्य है। इसी शुभाशंसा को व्यक्त करते हुए वैदिक ऋषियों ने उद्घोष किया था-

'ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयश्शान्तिर्वनस्पतयश्शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः। शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।'[8]

वह शान्ति अब अशान्ति में परिवर्तित हो रही है। पृथ्वी (मृदा), वायु, आकाश (ध्वनि), सूर्य (पराबैंगनी किरणें), जल सब कुछ अशान्त, असंतुलित एवं विकारग्रस्त हैं। प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है, जैव विविधता गड़बड़ा रही है, वन्य प्रजातियां नष्ट हो रही हैं, प्रकृति का पोषण व दोहन होने की बजाय मात्र शोषण हो रहा है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र इससे अपरिचित नहीं है। इस सामयिक विकराल स्थिति के प्रति वे संवेदनशील है। यद्यपि उनकी अधिकांश कथाएं मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी हैं, परन्तु चित्रपर्णी की कई लघुथाओं में तथा कुक्की कथा में उनकी प्रकृति एवं पशुपक्षियों के प्रति संवेदनशीलता प्रकट होती है। उनकी छागबलिः, वृद्धामहिषी, नयनयोर्भाषा, कुक्की, इदम्प्रथमतया, प्राणभयम्, कृतज्ञः, वैराग्यम् एवं अश्रुमूल्यम् आदि कथाएं पर्यावरण चेतना की साक्षात् प्रमाण है। अश्रुमूल्यम् लघुकथा में इस पांचभौतिक सृष्टि की सार्थकता प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं- 'प्रकृतिक्रोडे, विलसतां पशुपक्षिस्थावराणां समेषां सार्थकता भवत्येव। नास्यां सृष्टौ पांचभौतिक्यां किमप्युपादानं निरर्थकम्। यथा मानवो जन्मजन्मान्तराचरितकर्मविपाकवशादिह संजातस्तथैव पशुपक्षिवृक्षा अपि। अतएव सर्वेऽपि मानवसाधारणा एव मन्तव्याः।'[9]

भ्रष्टाचार अधुनातन समाज की एक अन्यतम समस्या है, जिसने सम्पूर्ण प्रशासनिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक व्यवस्था को आमूलचूल जर्जर कर दिया है। नैतिक सिद्धान्तों का स्थान भ्रष्टाचार ने ले लिया है। जीवन मूल्य क्षीण हो रहे हैं, धन की महत्ता बढ़ रही है, लोभ बढ़ रहा है, चहँ ओर अर्थ की सत्ता है। परिवेशगत प्रभाव के कारण मुनष्य कम परिश्रम में अधिक धनोपार्जन करना चाहता है। भ्रष्टाचार (आर्थिक) इसका लघु एवं सरल मार्ग है। चित्रपर्णी की लघुकथाएं नियुक्तिः मद्यनिषेधः, ऊध्वरेता, आत्मविश्लेषणम्, अवमानना, रक्षाकवचम्, भिक्षुकः, नियतिकौशलम् आदि भ्रष्टाचार पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए जनमानस को आन्दोलित करती हैं तथा नैतिकता का मार्ग प्रशस्त करती हैं। आत्मविश्लेषणात्मक स्वरुप में कलियुग के प्रचारतन्त्र पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं-'कलियुगेऽस्मिन् प्रचारतन्त्रमेव जीवितसर्वस्वम्।.....ये परमार्थतः स्वाभिमानैकजीविताः स्वोपार्जितवित्ततुष्टा, चारित्र्यकल्पतरुभूताः शतसहस्रगुणालङ्कृताश्च ते पङ्के गाव इव भृशं सीदन्ति।'[10]

कविवर की कथाएं उनके आस-पास के चलते फिरते जीवन्त समाज से ली गई है। कथानिकाओं के कथ्य सामाजिक विसंगतियों एवं सुसंगतियों से उठाए गए है। अतः उनके कथ्य मौलिक हैं, पात्र मौलिक हैं, संवाद मौलिक हैं, परन्तु उनरका संरचनात्मक स्वरूप हिन्दी अथवा अंग्रेजी से आया है। कवि का ऐसा मानना है कि उत्कृष्ट कहानी लिखने के लिए अन्य भाषाओं की कथाओं का ज्ञान जरूरी है। कविवर ने जार्ज बर्नार्डशा, मोपासाँ, मार्कट्वेन, चालूस डिकंस, जेन आस्टिन जैसे अंग्रेजी कथाकार एवं मुंशी प्रेमचन्द, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, विष्णुप्रभाकर, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि को पढ़ा है। कवि को 'कुक्की' तथा 'चंचा' की प्रेरणा मुंशी प्रेमचन्द की हीरा-मोती तथा रूसी उपन्यास तुर्गनेव से मिली। देवरा हजारी एवं रक्तवैतरणी कथा संग्रह की कहानियों पर यद्यपि अन्तः संवाद का प्रभाव आया है, परन्तु यह उनकी कथाओं का अलंकार ही है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की सूक्ष्म दृष्टि अपने आस-पास घट रही सामान्य घटनाओं को कथ्य बना देती है। वे यथार्थ के नजदीक हैं। अपने आस-पास के सामाजिक परिवेश में विद्यमान व्याकुलताओं के भीतर छिपी व्यथाओं को वे अनुभूत करते हैं तथा अभिव्यक्त करते हैं। उनकी कथाओं की

मौलिकता, सहजता एवं रोचकता उन्हे चलायमान चित्रवत् प्रस्तुत कर देती है, यहां तक कि उनकी ऐतिहासिक कथानिकाएं भी काल की बाधा को पारकर प्रत्यक्ष प्रतीत होती हैं।

कविवर की स्वाध्याय प्रवणता एवं अन्तः संवादी प्रवृत्ति से उनके कथा-साहित्य को प्रेरणा एवं निखार मिला है। उनकी कथावस्तु की आत्मा भारतीय ग्रामीण अंचल में बसती है। उनके विषय शुद्ध भारतीय है। उनकी कथाओं को पढ़कर मुंशी प्रेमचंद की कहानियों की याद आती है। कथाओं की केन्द्रीय बिन्दु भारतीय समाज की विसंगतियां हैं, जो जनमानस को झकझोरती हैं। जिस ग्रामीण परिवेश से कवि आते हैं, उस परिवेश में उन्होनें जमीन से जुडी जटिलताओं को नजदीक से महसूस किया है। समाज की आम समस्याओं को कविवर ने अपने नजरिए से देखा है और अपनी शैली में प्रस्तुत किया है। उनका अपना दृष्टिकोण है, जिसमें वे पुरातन का अन्धानुकरण नहीं करते तथा नवीन के प्रति अति उत्साह व्यक्त नहीं करते। उनका सामंजस्य ही उनकी मौलिकता है, उनके समाधान उनके अपने दृष्टिकोण से उद्भूत हैं। तपती का यौन उत्पीड़न, शुभदा की प्रेमकथा, अनामिका की उपेक्षा, विमला का अन्तद्वन्द्व, रमा की सेवा, रामलाल का हृदय परिवर्तन, बिट्टी की अधूरी प्रेम कहानी, वन्दना की वैधव्यकथा, सोमधर के प्रति हेय दृष्टिकोण, कुक्की के साथ हुआ छल, मुन्नी बाई का शोषण के विरूद्ध आक्रोश, एकचक्रः का आदर्श दाम्पत्य, भाग्य से ठगी गई महुली की निश्छलता, दिदिशा की पीड़ा, प्रेताधीश्वरी का ममत्व, नगर से गाँव वापसी का संकल्प, वन्ध्या की वेदना, नर्तकी का उदात्त चरित्र, मुदिता का न्याय, ध्रुवस्वामिनी के लिए पथ प्रदर्शन, सुनन्दा की उदारता, श्यामा की किंकर्त्तव्यविमूढ़ता, कृष्णा का उद्धार, बाणभट्ट का दर्शन एवं चित्रपर्णी के विद्युत् उन्मेषसम लघुकलेवर सामाजिक कटाक्ष सब कुछ कविवर की मौलिक उद्भावनाएं हैं शुद्ध भारतीय परिवेश से उत्पन्न, देशज, माटी से जुड़ी, परन्तु एकदम नये कलेवर में, नये रूप में प्रस्तुत।

**कथाओं की प्रासंगिकता व उपादेयता**

कविवर की कथाएं समकालीन समाज के लिए निस्संदेह रूप से उपादेय है। कथाओं की साम्प्रतिकी प्रासंगिकता को लेकर शोधग्रन्थ में पृथक् से विस्तारपूर्वक षष्ठम् अध्याय में चर्चा की गई है। सामाजिक सरोकारों से जुड़ा ऐसा कोई विषय नहीं है, जो कवि की गहन एवं सूक्ष्म दृष्टि से बचा हो और उनकी कथाओं का विषय न बना हो। ऐसी कोई समस्या अथवा संवेदना नहीं है जिसने कवि के मर्म को छुआ न हो और कवि ने उसका समाधान किया न हो।

अधुनातन समय में जातीयता, साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता, भौतिकता, भ्रष्टाचार आडम्बर, दिखावा, दोहरी मानसिकता, नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन, राजनीतिक स्वार्थपरता, शहरों की ओर पलायन जैसी प्रवृत्तियां सामाजिक ताने-बाने को शीर्ण कर रही हैं। कवि ने इन सभी समस्याओं के मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारणों की पृष्ठभूमि में जाकर, उनकी विवेचना कर, उनके अन्धानुकरण को छोड़कर प्रासंगिक को अपनाने का आग्रह किया है। उनकी ऐतिहासिक कहानियां भी तत्कालीन समाज का एवं मानव मन का विश्लेषणात्मक विवेचन करते हुए अद्यतन समाज के लिए अनुकरणीय जीवन मूल्यों का ही उपदेश करती हैं।

प्राचीन गौरवशाली मूल्यों को अपने गर्भ में समेटे अर्वाचीन संस्कृतसाहित्य की ऊर्वरधरा पर अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित एवं विकसित वटवृक्षरूपी अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कर्तृत्व की एक शाखा कथाविधा पर केन्द्रित यह शोध नयी पीढ़ी को नया

दृष्टिकोण एवं पुरातन जीवनमूल्य समर्पित कर सार्थकता को प्राप्त होगा। यही शोध का अन्तर्निहित मन्तव्य है

एक जिम्मेदार साहित्यकार के धर्म का पालन अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने पूर्ण मनोयोग से किया है। उनकी कथाएं समाज को प्रतिबिम्बित करते हुए समाधान का आदर्श मार्ग प्रस्तुत करती हैं, वे जनमानस को दोलायमान करती हैं, हृदयवीणा को स्वरायमान करती हैं, विचारों को गतिमान करती हैं तथा सन्मार्ग में प्रेरित करती हैं। समसामयिक समाज की लगभग सभी समस्याओं को रुचिकर कथाओं के माध्यम से कविवर ने उद्घाटित किया है। यद्यपि समकालीन समाज की एक ज्वलन्त समस्या युवापीढ़ी की हिंसक प्रवृत्ति- आतंकवाद तथा उग्रवाद आदि को कविवर की कथाओं में स्थान नहीं मिला है। चूंकि मिश्र जी की लेखनी सतत प्रवाहशील है, अतः आशा करते हैं कि इन विषयों तथा समाज पर इनके दुष्परिणामों को रेखांकित करने वाली कथाएं सहृदय पाठक वर्ग को मिलेगी।

## संदर्भ


1. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ-१२
2. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ-१२
3. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ-२६
4. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ-२६
5. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ-४७
6. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ-५१
7. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ-१३०
8. यजुर्वेद, ३६.१७
9. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, चित्रपर्णी, पृष्ठ-११७
10. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, चित्रपर्णी, पृष्ठ-६६

# कविवर्य रेणापुरकर के काव्यों में आए हुए अलङ्कार" एक अध्ययन

**अखिलेश अ. शर्मा**

संस्कृत विभाग, मुलजी जेठा महाविद्यालय, जळगांव

namonamah24@gmail.com

**शोधसारांश**

*संस्कृत भाषा की काव्यधारा हजारों वर्षों से चली आ रही है जो आज भी विद्यमान् है। परंतु आज समाज में संस्कृत भाषा को ऐसे देखा जाता है जैसे संस्कृत मे कोई भी नवीन काव्य यानवीन विषयों पर साहित्त्य नही लिखा जा रहा हैं । कुछ लोग तो यहाँ तक कह देते है कि संस्कृत मृत भाषा है। यदि हम देखें तो बीसवी और इक्कीसवी सदी मे भीऐसे अनेकों संस्कृत विद्वान हमे मिल जाएंगे जिन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया है ।*

*तथा उपरोक्त आक्षेपों का उत्तर हम इस प्रकार से दे सकते है कि जो संस्कृत पढ़ते ही नही है वे उसके साहित्त्य को क्या जानेंगे? क्योंकि संस्कृत साहित्त्य आज भी काव्य, नाटक, अलङ्कार, छन्द इत्यादि की दृष्टि से वैसेही परिपूर्ण है जैसे प्राचीनकाल मे था । इसी बात को ध्यान मे रखकर कविवर्यहरिश्चंद्र रेणापुरकर जो कि इक्कीसवी सदीके आधुनिक संस्कृत साहित्त्यकार है तथा जिन्होंने आधुनिक सामाजिक राष्ट्रीय जीवन को अपने साहित्त्य का आधार बनाकर विविध छंदों मे लगभग बीस हजार श्लोकों की रचना की है उनके ही साहित्य को आधार बनाकर अलङ्कारो का अध्ययन इस शोध लेख में किया गया है । जिसमे उनके काव्यों मे आए हुए विविध अलंकारों का दिग्दर्शन कराया गया है ।*

## प्रस्तावना

संस्कृत भाषा की काव्यधारा हजारों वर्षों से चली आ रही है जो आज भी विद्यमान् है परंतु आज समाज में संस्कृत भाषा को ऐसे देखा जाता है जैसे संस्कृत मे कोई भी नवीन काव्य, नवीन विषयों पर साहित्त्य नही लिखा जा रहा हैं । कुछ लोग तो यहाँ तक कह देते है कि संस्कृत मृत भाषा है परन्तु बीसवी और इक्कीसवी सदी मे भी अनेकों संस्कृत विद्वानों ने अपनी काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया है । तथा आक्षेपों का उत्तर हम इस प्रकार से दे सकते है कि जो संस्कृत पढते ही नही है वे उसके साहित्त्य को क्या जानेंगे? क्योंकि संस्कृत साहित्त्य आज भी काव्य, नाटक, अलङ्कार, छन्द इत्यादि की दृष्टि से वैसेही परिपूर्ण है जैसे प्राचीनकाल मे था । इसी बात को ध्यान मे रखकर कविवर्य रेणापुरकर जो कि इक्कीसवी सदीके आधुनिक साहित्त्यकार है । उनके साहित्त्य को आधार बनाकर अलङ्कारो का अध्ययन इस शोध लेख में किया गया है ।

## विषय प्रवेश

आभूषणों के बिना मनुष्य का सौंदर्य जैसे पूर्णरूप से खिलता नहीं है कवि का काव्य भी उसी अनुरूप अलंकारों के बिना सौंदर्य युक्त नहीं लगता हैं । अत: सभी कवि अपने काव्यों में अलंकार योजना अवश्य करते हैं । आचार्य मम्मट ने काव्य स्वरूप के विषय में लिखा है -

**"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंङ्कृती पुन: क्वापि"**[१]

दोष से रहित, गुणयुक्त और (साधारणत: अलंकार सहित परन्तु) कहीं कहीं अलंकार रहित शब्द और अर्थ (दोनो की समष्टि) काव्य कहलाती है । तात्पर्य यह है की काव्य में कम अधिक मात्रा मे क्यों ना हो अलंकार होना ही चाहिए । ठीक इसी प्रकार साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कहते है -

**"शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन: ।**

**रसादीनुपकुर्वन्तोलंकारास्तेङ्गदादिवत्"** ॥[२]

शोभा को अतिशयित करने वाले, रस भाव आदि के उपकारक जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म है वे अंगल (बाजूबन्द) आदि की तरह अलंकार कहाते हैं। जैसे मनुष्यों के बाजूबन्द

आदि अलंकार होते हैं उसी तरह उपमा आदि काव्य के अलंकार होते हैं ।काव्यदर्शकार दण्डी लिखते हैं।

**"काव्यशोभाकरान्धर्मानलङ्कारान्प्रचक्षते"**[३]

काव्य की शोभा करने वाले धर्मों को अलङ्कार कहते हैं। आचार्य जयदेव तो और बडी टीका करते हुए कहते है जो लोग अनलंकृत काव्य को काव्य मानते हैं वह 'अनलमनुष्ण' क्यों नहीं मानते -

**"अङ्गी करोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।**
**असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती ॥**[४]

तात्पर्य ये हुआ कि अलंकार रहित काव्य काव्य नहीं हो सकता है। अलम् + कृ+घञ् प्रत्यय लगने पर यह शब्द बना है।

**अलङ्करणम् अलङ्कारः अलङ्क्रियते अनेन इति अलङ्कारः ।**

प्रधान रूप से अलंकार दो प्रकार के होते हैं शब्दालंकार और अर्थालंकार। शब्दालंकार वे है जिनमें केवल विशेष शब्दों के कारण काव्य में सुन्दरता आती है। अनुप्रास, यमक आदि अलंकार शब्दालंकार कहलाते हैं। वहीं जिन काव्यों में अर्थ की प्रधानता हो वहाँ अर्थालंकार होता है जैसे उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा आदि। कुछ विद्वान उभयालंकार के नाम से तीसरा अलंकार ग्रहण करते है जिसमें श्लेष आदि अलंकार आ जाते हैं।

कवि रेणापुर के काव्यों में उपरोक्त दोनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है वैसे तो आपके सारे काव्यों में अलंकार दिखाई देते हैं परन्तु 'श्रद्धा कुसुमाञ्जलिः' जैसे काव्य में स्पष्ट एवं बहुलता से दिखाई देते हैं। अन्य काव्यों में भी अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्ष. अतिशयोक्ति आदि अलंकार विशेष रुप से दृष्टि गोचर होते हैं कवि को ये अलंकार प्रिय भी हैं। आगे कवि के काव्यों में आये हुए अलंकारों को सोदाहरण प्रस्तुत किया जायेगा ।

**विषय वर्णन : - शब्दालंकार**

**अनुप्रास -**

शब्दलंकारों में अन्यतम एवं प्रधान अलंकार 'अनुप्रास' ही है इसके पांच भेद हैं - छेकानुप्रास. वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास. लाटानुप्रास और अन्त्यानुप्रास । अनुप्रास की व्याख्या करते हुए विश्वनाथ कहते हैं -

**"अनुप्रासः "शब्द साम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्"**[५]।

स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् पद, पदांश के साम्य को अनुप्रास कहते हैं। आगे अनुप्रास के विशेष भेद लक्षण एवं उदाहरण दिये जा रहे है -

**छेकानुप्रास -**

**"छेको व्यञ्जनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा"।**[६]

व्यञ्जनों के समुदाय की एक ही बार अनेक प्रकार की समानता होने को छेक अर्थात् छेकानुप्रास कहते हैं। इसमें एक वा अनेक वर्णों का दो बार प्रयोग होता है जैसे

**"वाराणसेय बुधमण्डल मण्डनोऽसौ**
**गीर्वाणगीर्गगनमण्डल सूर्य एव।**
**प्राचीन भारत सुसंस्कृति गायकोऽसौ**
**हा ! हन्त हन्त ! गतवान् खलु वासुदेवः"**[७] ।।

संस्कृत विद्वान् वासुदेव जी को इसमें श्रद्धांजलि दी गई है तथा उनकी विद्वत्ता को बताया गया है। यहाँ पर मण्डलःमण्डन - में मण्ड, मण्ड। गीर्वाण, गीर्गगन यहाँ पर गी, ग, का दो बार प्रयोग हुआ है अतः यहाँ छेकानुप्रास है।

**वृत्यनुप्रास -**

**"अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद् वाप्यनेकधा।**
**एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते" ॥**[८]

अनेक व्यजनो अथवा चरणों की एक ही प्रकार से समानता आवृत्ति होने पर "वृत्त्यनुप्रास" होता है।

जैसे नीचे दिये रलोक में भारतीय विद्याभवन के सर्वेसर्वा प्रतिथयश विद्वान श्रीरामकृष्ण जी को श्रद्धांजलि देते हुए 'नि' वर्ण का एवं 'क' वर्ण का प्रयोग अनेक बार आया है।

**"निर्भीक निर्मल निरञ्जन निर्विकल्पो**
**निर्मन्युनिर्भय निराकुल निर्वितर्क: ।**
**निर्लिप्त निर्मम निराकुल निर्विकारो**
**निर्व्याजधीरपरमः खलु रामकृष्ण"॥[९]**

यहाँ प्रथम पंक्ति में 'नि' का प्रयोग चार बार, दूसरी में भी चार बार तीसरी में भी चार बार हुआ है। 'क' वर्ण की आवृत्ति प्रथम पंक्ति में दो बार हुई है यहाँ स्वरुप और क्रम दोनों में साम्य होने से वृत्यनुप्रास है।

**श्रुत्यनुप्रास -**

**"उच्चार्यत्वद्यदेकत्र स्थाने तालुरदादिके।**
**सादृश्यं व्यञ्जनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते"॥[१०]**

तालु, कण्ठ, मूर्धा, दन्त आदि किसी एक स्थान से उच्चरित होने वाले व्यंजनों की समता को श्रुत्यनुप्रास कहते हैं। उदाहरणार्थ यहाँ कवि आत्मा और परमात्मा को भूलना नहीं चाहिए इस विषय को प्रतिपादित करते हुए कि यही हमारी संस्कृति का मूल है लिखते हैं

**"विश्वं विलोक्यापि च विश्वमूलं देहं विलोक्यापि च देहमूलम्।**
**स्मृतेर्न सार्यं मनुजेन नूनमित्येव नः संस्कृति मूलतत्वम्"॥[११]**

उपरोक्त श्लोक की दूसरी पंक्ति में 'स्मृतेर्न', 'संस्कृति', तत्वम् इन पदों में तकार तथा सार्यन्, संस्कृति: इन पदों में सकार का उच्चारण स्थान तालु होने से श्रुत्यनुप्रास है।

**अन्त्यानुप्रास -**

**"व्यञ्जनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु।**
**आवर्त्यतेऽन्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्" ॥[१२]**

स्वर के साथ ही यद व्यञ्जन की आवृत्ति हो तो वह अन्त्यानुप्रास कहलाता है। इसका प्रयोग पद अथवा पाद के अन्त मे ही होता है । यथावस्थ से तात्पर्य यथा सम्भव विसर्ग स्वर आदि से युक्त होना चाहिए । उदाहरणार्थ.

**"श्वासोच्छ्वास - व्रजन - निमिषोन्मेष हृत्स्वन्दनानि**
**पानास्वाद-प्रवचन-सभालाप-संभाषणानि।**
**स्वप्नास्वापोच्चलन-वलन-स्थान यानादिकानि,**
**सर्वं तस्य श्रुतिमयमभूत् श्री विदेहस्य साधो:"॥[१३]**

स्वामी विदेह को श्रद्धांजलि देते हुए कि उनका श्वास-प्रश्वास निमेषोन्मेष, हृदय की धड़कन, खाना-पीना, संभाषण, सोना-जागना, चलना-फिरना, बैठना-उठना सब कुछ वेदमय था। यहाँ प्रत्येक तीन पद के अंत में आनि, आनि, आनि की आवृत्ति तथा पाद मध्य में अन्, अन्, अन्की आवृत्ति होने से यहाँ अन्त्यानुप्रास है।

**पुनरुक्ति प्रकाश -**

अर्थ को रुचिकर बनाने के लिए एक ही शब्द की आवृत्ति की जाती है । जैसे-

**"श्रावं श्रावं सरसमधुरं तस्य वेदोपदेशं**
**पाठं पाठं ललितरमणीयञ्चभाष्यं तदीयम् ।**
**पायं पायं श्रुतिवर सुधा सारमार्येण वृष्टं**
**नूनं लोकाः परममुदिता मंत्रमुग्धा इवासन्"॥[१४]**

यहाँ पर 'श्रावं श्रावं', पाठं पाठ, पायं पायं में जो आवृत्ति है वह अर्थ को रुचिकर बनानेके लिए होने से पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार होता है।

**अर्थालंकार**

शब्दालंकार में जहाँ शब्दों की अलंकृति देखी जाती है वही अर्थालंकारों मे अर्थो की अलंकृति देखी जाती है । अर्थालंकारों के भी अनेक भेद हैं यहाँ सब का वर्णन न करते हुए रेणापुरकर के काव्यों में जो अर्थालंकार प्राप्त हुए है वे क्रम पूर्वक नीचे दिये जा रहे हैं-

**उपमा अलंकार -**

सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा अलंकार का विशिष्ट स्थान है। उपमा का वर्णन करते हुए विश्वनाथ कहते हैं

**"साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः"**[१५]

एक वाक्य में दो पदार्थों के, वैधर्म्य रहित, वाच्य सादृश्य को उपमा कहते हैं। रेणापुरकर के काव्यों में यत्र तत्र सर्वत्र ही इस अलंकार का प्रयोग होता हुआ दिखाई देता है "इदिरा पतनोत्थानम् में जब इंदिरा गांधी ने पूर्वी बंगाल को पाकिस्तान से मुक्त करवाने का जो अत्यन्त कठिन कार्य किया था उसे रेणापुरकर लंका मुक्ति कहते हैं और प्रभुराम के सदृश इंदिरा को मानते हैं अतः यहाँ बडी ही सुंदर उपमा है-

**"स्वार्थापूर्त्यै भुवि बहुतराः सङ्गराः सम्बभूवु**
**र्दास्याबद्धव्यथितजनमुक्त्यै तु नूनं दुरापः।**
**लङ्कामुक्त्यै रघुवरकृतं सङ्गरं पूर्वकाले**
**बाङ्ग्लामुक्तै पुनरिह चकारेन्दिरागान्धिवर्या" ॥**[१६]

श्रीराम के लंका मुक्ति के लिए युध्द करना और इंदिरा के द्वारा बांग्लादेश को मुक्त कराना दोनो समान ही है। यहाँ इंदिरा को श्रीराम समान बताने से उपमालंकार सिद्ध होता है।

**उत्प्रेक्षा अलंकार –**

**सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परेणयत्"**[१७]

प्रकृत वर्ण्य उपमेय की उपमान के साथ संम्भावना ही उत्प्रेक्षा कहलाती है। जैसे

**शैलेन्द्रोन्नत भव्य दिव्य धवलं झंझामरुन्निश्चलं**
**पारावारगभीररत्नभरितं लोकोपकारार्पितम्।**
**सर्वाधार सहस्त्ररश्मिरुचिरं निष्काम सेवारतं**
**धीरोदात्त महामुनीन्द्रचरितं मान्याः क्षणं ध्यायताम्" ।।**[१८]

यहाँ पर महर्षि दयानंद की संभावना हिमालय, समुद्र तथा सूर्य से करना ही उत्प्रेक्षा है । अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार हुआ ।

**अनन्वय अलंकार -**

**"उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैकवाक्यगे अनन्वयः"**[१९]

एक वाक्य में एक ही के उपमान तथा उपमेय दोनों होने पर अनन्वय अलंकार होता है।

**"आदर्शधर्मनिरपेक्षजनेन तेन**
**स्पष्टीकृतं कथमभूत् भुवि भारतोऽयम्।**
**नित्यं हि सर्वमतधर्मविलासभूमि-**
**र्धर्मा हि यत्र सकला न्यवसन् सुखेन" ॥**[२०]

यहाँ कवि अटलबिहारी वाजपेयी को एक आदर्श धर्मनिरपेक्ष बताना चाह रहे है। बाद में उन्हे सर्वधर्मों की विलासभूमी बताते हुए उन्ही में सभी धर्म सुखपूर्वक निवास करते हैं, ऐसा बताना ही अनन्वय है। क्योंकि यहाँ अलग से कोई उपमान नहीं है।

**रुपक अलंकार -**

**"तद्रुपकमभेदो य उपमानोपमेययोः"**[२१]

उपमान और उपमेय का भेद प्रसिद्ध है परन्तु जहाँ सादृश्यातिशयवश जो अभेद वर्णन हैवह रुपक अलंकार है। जैसे

**"ऐश्वर्यामत्यां निजराजधान्या-**
**ममात्यवर्यास्यगृहानरेषु।**
**धनाढ्य-हर्मेषु च रुद्धप्रायं**
**स्वातन्त्र्यगविमलप्रवाहम्" ॥**[२२]

यहाँ पर 'स्वातन्त्र्य गङ्गा' में स्वतंत्रता पर गंगा का आरोप ही रुपकालंकार है।

**दृष्टान्त अलंकार -**

इस अलंकार को 'गम्य औपम्याश्रित' अलंकार माना जाता है । इसका लक्षण देते हुए मम्मट कहते है । -

**"दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्"**[२३]

इन [ उपमान, उपमेय, उनके विशेषण और साधारण धर्म आदि ] सबका 'बिम्बप्रतिबिम्बभाव' होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है । उाहरणार्थ -

**"त्यक्ता भार्या खलु जनमतापेक्षया राघवेण**

**लोकास्त्यक्ता: स्वकुलतनयापेक्षया गान्धिना ते ।**

**त्यक्ता न प्रत्युत खरतरं बन्धनं प्रापिताश्च**

**सत्यं त्रेताकलियुगभवं विप्रकृष्टान्तरालम्" ॥**[२४]

यहाँ त्रेतायुग में जनमत की अपेक्षा से श्रीराम अपनी पत्नी को छोड़ते है। ठीक उसी

तरह कलियुग में इंदिरा गांधी अपने कुल और पुत्र मोह मे जनता को छोड़ देती हैं। यहाँ श्री राम तथा इंदिरा गांधी का पत्नी का और प्रजा का छोड़ना, जनता के लिए और पुत्र,कुल लिएबिम्बप्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

**अर्थान्तरन्यास अलंकार –**

यह गम्य औपम्याश्रित सादृश्यमूलक अलंकार है।

**"सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।**

**यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधम्म्यणेतरेण वा"**[२५]

सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न [अर्थात् समान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य के द्वारा जो समर्थन किया जाता है वह अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। जैसे-

**"भोगासक्ता विषयनिरता देहमात्रं भजन्तो**

**न ध्यायन्तः किमपि वपुषोऽन्यात्मतत्वं विविक्तम्" ।**

**चार्वाकाणामसुरसरणी भावयन्तो वरिष्ठ-**

**मुद्दत्तोच्छ्वलयुकजना राष्ट्रचिन्तानिमित्तम्" ॥**[२६]

यहाँ पर भोग और विषयों में आसक्त लोगों को अपने शरीर को छोड़कर आत्मतत्व आदि विषय अरुचिकर लगते है इस सामान्य सिद्धान्त का 'चार्वाकों की असुरसरणीं' के समान इस विशेष उदाहरण के द्वारा किया गया है इसलिए यह साधर्म्य के द्वारा विशेष से सामान्य के समर्थन का उदाहरण है।

**अतिशयोक्ति अलंकार -**

अलंकार को अध्यवसायमूलक अभेद प्रधान अलंकार माना जाता है।

**"सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते"**[२७]

अध्यवसाय के सिद्ध होने पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है विषय (उपमेय) का निगरण करके विशयी (उपमान के साथ उसके अभेदज्ञान को अध्यवसाय कहते है। सामान्य रूप से जहाँ पर किसी वर्ण्य विषय को अतिरंजित रूप में प्रस्तुत किया जाए तथा इस प्रकार लोक सीमा का अतिक्रमण किया जाए तो वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है - रेणापुरकर जॉर्ज एफ कॅनेडी की प्रशंसा में लिखते हैं-

**"यावद्विभान्ति गगने रविचन्द्रताराः**

**यावद्भवन्ति भुवि भूधररसिन्धुधाराः।**

**यावच्च मानवगणस्य भुवि प्रतिष्ठा**

**तावल्लसेत्कनडिगौरवदिव्यगाथा" ॥**[२८]

यहाँ केनेडी की प्रशंसा मे अतिरंजितता देखी जा सकती है । तथा रवि, चन्द्र, पर्वत, सिन्धु से तुलना करना भी लोक सीमा का अतिक्रमण करने के समान होने से अतिशयोक्ति अलंकार है ।

**समासोक्ति अलंकार -**

**"परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः"**[२९]

श्लेष विशेषणों के द्वारा अप्रकृत के व्यवहार का कथन 'समासेन संक्षेपेण उक्तिः 'समासोक्ति अलंकार कहलाता है।'

**"स्वप्ने दत्तं वचनमपि यैः पालितं यत्र भूपैः**

**त्यक्ता राज्ञा दयितगृहिणी यत्र लोकार्थमेव।**

**राज्ञा यत्र स्वतनुपिशितं पक्षिरक्षार्थदत्तं**

**तद्देशस्य प्रवरचरितं वर्णनीयं कथं नु" ॥**[३०]

यहाँ प्रस्तुत स्वप्न में दिये हुए वचन, पत्नी का लोकार्थ त्याग करन, स्वयं का शरीर पक्षियों के लिए दान देना इत्यादि के वर्णन से अप्रस्तुत शिवि, हरिश्चन्द्र, दधीचि सम राजाओं का वर्णन प्रकट होता है अतः यहाँ समासोक्ति अलंकार है।

**अप्रस्तुत प्रशंसा -**

**"अप्रस्तुत प्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया"**[३१]

प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति करानेवाली जो अप्रस्तुत अर्थ की प्रशंसा है वही अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार कहलाता है।

**"मधुर निर्झर जीवनदायकं प्रखरभास्कर भास्वरदीपनम् ।**
**शशधरामृत पूरित तोषणं स्मरत मौनिवरादद्भुत**
**जीवनम्।।"**[३२]

यहाँ झरने के समान जीवनदायक, सूर्य के समान दीप्तिमान, चन्द्र के समान अमृत से पूर्ण जो है इस प्रकार प्रस्तुत अर्थ कहकर अप्रस्तुत महर्षि दयानंद की प्रशंसा होने के कारण अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होता है ।

**उपसंहार : -**

इस प्रकार हम कह सकते है की आधुनिक काल में भी कविगण विविध अलंकारों में अपने काव्य रच रहें है । यही संस्कृत की जीवंतता हैं ।

## संदर्भग्रंथसूची


1.मम्मटाचार्यकाव्यप्रकाश 1-3पृ.19 ज्ञानमण्डललिमिटेडवाराणसी 5 ।

2.विश्वनाथसाहित्यदर्पण10–1पृ.605 मोतीलालबनारसीदास,दिल्लीनवम्संस्करण1977 ।

3. चन्द्रालोकजयदेव 1-8 (विवेकानंदचरितमहा. समा. 'डॉ: शालिग्रामशास्त्री' पृ.149 सेसाभार)

4. विश्वनाथसाहित्यदर्पण10-2(पादार्ध)पृ.608 मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

5.विश्वनाथसाहित्यदर्पण10.3पृ.610मोतीलालबनारसीदास दिल्ली

6.प्रो. हरिश्चन्द्ररेणापुरकरश्रद्धाकुसु. श्लोकनं.2पृ.75प्रो.हरिश्चन्द्ररेणापुरकर, गुलबर्गाप्रथमावृत्ती:- मे2005

7.विश्वनाथसाहित्यदर्पण10–4पृ.611मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

8.प्रो. हरिश्चन्द्ररेणापुरकरश्रद्धाकुसु. श्लोक14पृ.70प्रो.हरिश्चन्द्ररेणापुरकर, गुलबर्गाप्रथमावृत्ती:- मे2005

9.विश्वनाथसाहित्यदर्पण10–5पृ.613 मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

10.प्रो. हरिश्चन्द्ररेणापुरकरप्राचीनभारतसंस्कृतीयम्- श्री. पी.व्ही. शंकरन्श्लोकक्र.29पृ.17 कट्टी, ॲडिशनल, रजिष्ट्रार, भारतीयविद्याभवनम, मुंबई-7 प्रथमावृत्ति: 2007

11.विश्वनाथसाहित्यदर्पण10.6 पृ.613 मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

12.प्रो. हरिश्चन्द्ररेणापुरकरश्रद्धाकुसु. श्लो.क्र.5 पृ.37 प्रो. हरिश्चन्द्ररेणापुरकर, गुलबर्गाप्रथमावृत्ती:- मे2005

13.प्रो. सतीशकुमारभारतीयकाव्यशास्त्रमीमांसापृ.29 रिगलबुकडिपोदिल्ली-6,1992

14.प्रो. हरिश्चन्द्ररेणापुरकरश्रद्धा.श्लोकक्र.3-पृ.37 प्रो.हरिश्चन्द्ररेणापुरकर, गुलबर्गाप्रथमावृत्ति: - मे 2005

15. विश्वनाथसाहित्यदर्पण10-14पृ.652 मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

16.प्रोहरिश्चन्द्ररेणापुरकरइंदिरापतनो.श्लो.24.पृ.10 प्रो.हरिश्चन्द्ररेणापुरकर, गुलबर्गाप्रथमावृति: - मे 2005

17.मम्मटाचार्यकाव्यप्रकाशसूत्र136पृ.460 ज्ञानमण्डललिमिटेडवाराणसी – 5

18.प्रो. हरिश्चन्द्ररेणापुरकरकाव्योद्यानश्लोकक्र.56पृ.60 प्रो. हरिश्चन्द्ररेणापुरकर, गुलबर्गाप्रथमावृत्ति: - मार्च 2006

19.मम्मटाचार्यकाव्यप्रकाशसूत्र 134पृ.460

ज्ञानमण्डल लिमिटेडवाराणसी – 5

20.हरिश्चन्द्रेणापुरकरकाव्यनिष्यन्दश्लोकक्र.41पृ33 तत्रैव

21.मम्मटाचार्यकाव्यप्रकाशसूत्र138 पृ463तत्रैव

22.हरिश्चन्द्रेणापुरकरकाव्योन्मेषश्लोक15पृ53तत्रैव

23.मम्मटाचार्यकाव्यप्रकाशसूत्र154 पृ486तत्रैव

24.हरिश्चन्द्रेणापुरकरइंदिरापतनोत्थानम्श्लोक 61पृ18तत्रैव

25.मम्मटाचार्यकाव्यप्रकाशसूत्र164 पृ500तत्रैव

26.हरिश्चन्द्रेणापुरकरकाव्योद्यानश्लोक1पृ30तत्रैव

27.हरिश्चन्द्रेणापुरकरसाहित्यदर्पण 10–46पृ680तत्रैव

28.हरिश्चन्द्रेणापुरकरश्रद्धाकु.श्लोकक्र.11 पृ.2तत्रैव

29.काव्यप्रकाशसूत्र147 पृ.474तत्रैव

# काश्मीर शैवाचार्य स्वामी लक्ष्मण जी महाराज का साहित्यिक योगदान

**प्रदीप**

संस्कृत विभागसाहित्य विद्यापीठ ,महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

pardeepjnu08@gmail.com

## संक्षिप्तिका

*भारतीय ज्ञान परम्परा का साहित्य ज्ञानमणिकों का विपुल भण्डार हैं। इसमें वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, भारतीय दर्शन, संस्कृति, अध्यात्म, योग, भाषा, इतिहास काव्यशास्त्र एवं धर्मशास्त्र एवं नीतिशास्त्र, स्तोत्र साहित्य आदि ज्ञानविधाओं का समावेश है। संस्कृत साहित्य में काव्य, महाकाव्य, गद्य, पद्य, खण्डकाव्य, नाटक, रूपक एवं उपरूपक साहित्यिक विधाओं का लेखन एवं प्रकाशन किया गया है। वर्तमान समय में यह साहित्य निरन्तर अबाध गति से प्रवाहमान है। आधुनिक संस्कृत साहित्य में साहित्यकारों, कवियों अनेकानेक साहित्यिक रचनाओं का लेखन किया जा रहा है। इनमें अभिराजराजेन्द्र मिश्र, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, रमाकान्त द्वारा शुक्ल, इच्छाराम द्विवेदी, सत्यव्रत शास्त्री, हरिदत्त शर्मा एवं रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित ग्रन्थों का नाम सहज ही ग्रहण किया जाता है। इसी क्रम में काश्मीर शैवदर्शन के आधुनिक आचार्यों में गोपीनाथ कविराज, पंडित अरुण शर्मा, कमलेश दत्त त्रिपाठी, नवजीवन रस्तोगी एवं माखनलाल कुकिलू आदि प्रमुख हैं।*

*इस संदर्भ में बीसवीं शताब्दी के काश्मीर शैवदर्शन पर जब ध्यान केन्द्रित किया जाता है उस समय श्रीराम, राजादान एवं बल्जिनाथ पण्डित, जानकी नाथ कौल तथा रामेश्वर झा आदि का नाम मानस पटल पर अंकित होता है। परन्तु इस शैवाचार्य परम्परा में ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज का नाम सर्वोपरि है। काश्मीर शैवाचार्य स्वामी लक्ष्मण जी महाराज द्वारा अनेकानेक शैवग्रन्थों का लेखन किया गया है। इन ग्रन्थों की प्रसिद्धि विश्वभर में प्रसारित है।*

*प्रस्तुत शोधपत्र में "काश्मीर शैवाचार्य स्वामी लक्ष्मण जी महाराज का साहित्यिक योगदान" विषय का चयन करते हुए काश्मीर शैवदर्शन के नामकरण, आचार्य परम्परा एवं स्वामी लक्ष्मण जी का जीवन परिचय एवं साहित्यिक योगदान इत्यादि विषयों का समीक्षात्मक वर्णन प्रतिपादित है।*

---

***Keywords*** -शैवदर्शन का परिचय एवं नामकरण, काश्मीर शैवदर्शन की आचार्य परम्परा, स्वामी लक्ष्मण जी महाराज जीवन परिचय, प्रसिद्धियाँ, प्रमुख कृतियाँ, अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्यिक योगदान ।

## विषय

भारतीय दार्शनिक परम्परा में शैवदर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रारम्भ हिमालय से अथवा काश्मीर प्रदेश से माना जाता है। समयानुसार यह दार्शनिक परम्परा विभिन्न सम्प्रदायों में विभाजित हो गया। उपनिषदों एवं पुराणों में शैवधर्म की पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है। पुराणों में शैवधर्म के पाशुपतकालामुख और कापालिक चार सम्प्रदायों का वर्णन किया गया है। शैवदार्शनिक इनको अपने मतानुसार मानते हैं। यह अत्यन्त गम्भीर विषय है। प्रमाणिक बिन्दुओं के आधार पर आगमों एवं भौगोलिक आधार शैवदर्शन का विभाजन इस प्रकार से विभाजित है।

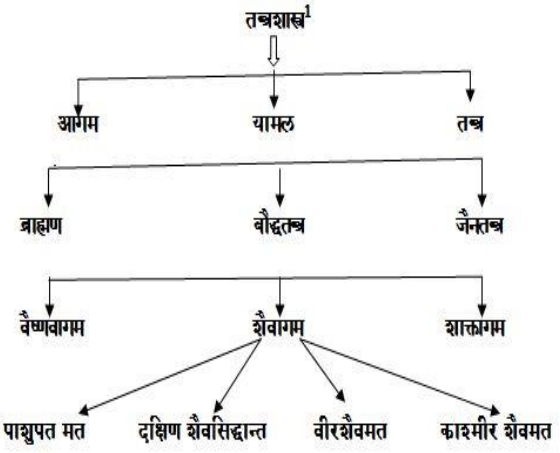


इस प्रकार से नकुलीशपाशुपत दर्शन गुजरात प्रदेश, दक्षिण शैवसिद्धान्त शैवदर्शन तमिलनाडु प्रदेश, वीर शैवदर्शन

कर्णाटक प्रदेश एवं काश्मीर शैवदर्शन काश्मीर प्रदेश में माना गया है।

**शैवदर्शन का परिचय एवं नामकरण :-**

शैवदर्शन ज्ञान परम्परा भारतीय संस्कृति में देदीप्यमान् सूर्य के समान प्रतिष्ठित है। इसका उद्भव एवं विकास स्वयं शिवकृपा का परिणाम है। इस संदर्भ में शैवदर्शन के उद्भव पर प्रकाश डालते हुए आचार्य सोमानन्द "शिवदृष्टि" ग्रन्थ के सातवें आह्निक् में स्पष्ट उल्लेख किया है। समय के ज्ञानप्रवाह में यह शास्त्र त्र्यम्बक के नाम पर "त्र्यम्बकशास्त्र" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शैवदर्शन की ज्ञानपरम्परा में काश्मीर शैवदर्शन को अनेक पर्याय नामों से जान जाता है। काश्मीर प्रदेश में प्रादुर्भावित होकर पल्लिवत होने के कारण यह ज्ञान परपरा काश्मीर शैवदर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुई। जिसके प्रारम्भ में त्र्यम्बकादित्य से लेकर सोमानन्द पर्यन्त का सांगोपांग वर्णन है। इसमें आचार्य त्रयी सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। जिनमें शैवाचार्य सोमानन्द, अभिनवगुप्त एवं उत्पलदेव का परिगणन किया जाता है। देश विशेष के कारण यह ज्ञान परम्परा काश्मीर शैवदर्शन नाम से प्रसिद्ध होकर सर्वत्र प्रचारित एवं प्रसारित हुई । आगम ग्रन्थों का आधार होने के कारण यह आगम दर्शन के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसी प्रकार से यह दर्शन स्पन्द दर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, त्रिक दर्शन एवं षडर्धदर्शन, षडर्धशास्त्र षडर्धक्रम विज्ञान दर्शन एवं ईश्वरशिवाद्वयवाद तथा शिवाद्वयवाद दर्शन आदि नामों से जाना जाता है।

**काश्मीर शैवदर्शन की आचार्य परम्परा :-**

काश्मीर शैवदर्शन की आचार्य परम्परा अत्यन्त सूदीर्घ एवं विशाल है। इसमें आचार्यों की गणना करना कठिन कार्य है। काश्मीर शैवाचार्यों के तपसाधना एवं ज्ञानपुञ्जों से यह दर्शन पुष्पित एवं पल्लिवत हुआ। इसके आचार्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान आचार्य त्रयी का माना जाता है। इसमें आचार्य सोमानन्द, आचार्य उत्पलदेव एवं अभिनवगुप्त का परिगणन किया जाता है।

काश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख आचार्यों सन्त दुर्वासा, मठिकागुरु, संगमादित्य, वसुगुप्त, सोमानन्द, अभिनवगुप्त, उत्पलदेव, भट्टकल्लट, क्षेमराज, जयरथ, रामकण्ठ, भास्करकण्ठ, भट्ट नारायण, योगराज, महेश्वरानन्द, वरदराज एवं मधुराज, उत्पलवैष्णव तथा भट्ट प्रद्युमन आदि प्रमुख हैं। इनके द्वारा विचरित ग्रन्थों का साहित्य विपुल भण्डार के रूप में उपलब्ध होता है।

काश्मीर शैव दर्शन की बीसवीं शताब्दी के आचार्यों में अमृत वाग्भव आचार्य द्वारा आत्मविलास, विंशतिकाशास्त्रम्, सिद्धमहारहस्यम् तथा वस्तुस्थितिप्रकाश ग्रन्थों का लेखन किया गया। इसी क्रम में बलज्जिनाथ पण्डित द्वारा स्वातन्त्र्यदर्पण, रामेश्वर झा द्वारा पूर्णताप्रत्यभिज्ञा ग्रन्थ का लेखन किया गया। यह ज्ञानपरम्परा अनवरत ज्ञानप्रवाह प्रवाहित होती रही। इसी प्रकार बीसवीं शताब्दी के काश्मीर शैवाचार्यों में ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज का साहित्यिक योगदान बहुमुल्य है। जिसका विवेचन शोधपत्र में विवेचित है।

स्वामी लक्ष्मण जी महाराज जीवन परिचय :- स्वामी लक्ष्मण जी महाराज काश्मीर शैवदर्शन के आधुनिक आचार्यों में सिद्धहस्त एवं सुप्रसिद्ध आचार्य माने जाते हैं। इनक जन्म 9 मई 1907 को श्रीनगर काश्मीर प्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम नारायण दास रैना तथा माता का नाम अरणामाली रैना था। इनके पिता को काश्मीर घाटी में हाऊस बोट चलाने वाले प्रथम व्यक्ति माना गया है।इनके बाल्यवास्था के गुरु स्वामी राम माने जाते हैं। स्वामी राम शिवभक्ति के तपस्थ आचार्य एवं शैवग्रन्थों के मर्मज्ञ थे। वर्तमान में इनके नाम पर

श्रीराम त्रिक आश्रम काश्मीर भूमि पर स्थित है। जिसका विविवत संचालन प्रवाहमान है। स्वामी लक्ष्मण जी ने मात्र तीन वर्ष की आयु में शिवभक्ति प्रारम्भ की और बीस वर्ष की आयु में अलौकिक अनुभूतियों का साक्षात्कार किया। साधु गंगा आश्रम में रहते हुए इन्होंने भारतीय संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, तन्त्र, व्याकरण एवं दर्शन के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। सन् 1931 में स्वामी जी ने भगवद्गीता पर "भगवद्गीतार्थसंग्रह" ग्रन्थ का लेखन किया। इसी क्रम में अनेक वर्षों तक ईश्वर गांव, गुप्त गंगा पर रहकर सारिका जी और प्रभा देवी जी को शैवग्रन्थों का ज्ञान प्रदान किया। सन् 27 सितम्बर 1991 में स्वामी जी शैवी साधना में लीन होकर चिदाकाश में अन्तर्भूत हो गए। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ साधना मार्ग में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं।

**प्रसिद्धियाँ :-**

काश्मीर शैवाचार्य स्वामी लक्ष्मण जे महाराज की प्रसिद्धियाँ न केवल भारत अपितु सम्पूर्ण विश्व में आच्छादित हैं। उनके द्वारा लिखित पुस्तक "Secret Supreme" बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के साथ समय व्यतीत किया। महर्षि अरविन्द के साथ आश्रम में रहकर अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करते हुए साधनागत सिद्धान्तों का अनुभव प्राप्त किया। इसी प्रकार से त्रिवनवल्ली में रमण आश्रम में महर्षि रमण के साथ साधनापरक सिद्धान्तों में आत्मानुभव ग्रहण किया। ज्ञान अनुभव के बाद साम्बपञ्चाशिका एवं उत्पलदेवस्तोत्रावली ग्रन्थों पर टीका लेखन करते हुए साधना में लीन रहे।

अखिल भारतीय तन्त्र सम्मेलन में कुण्डलिनी विज्ञान पर शोधपत्र प्रस्तुत किया। वहाँ इनको महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज का आशीर्वाद मिला एवं साधना पथ पर आगे बढने की प्रेरणा प्राप्त हुई। इस सम्मेलन में इनके वैदुष्य को देखकर डी.लिट् की उपाधि से समानित किया गया। इसी प्रकार से इन्होंने महर्षि महेश योगी, स्वामी रामदास, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती , स्वामी मुक्तानन्द गणेशपुरी आदि का सानिध्य मिला एवं शैव उत्कृष्ट साधना को सिद्धहस्त आचार्य के रूपे में सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इनके पास जयदेव, नीलकण्ठ गुर्टु, रामेश्वर झा तथा जानकी नाथ जैसे शिष्य शैव दर्शन के अध्ययन हेतु आते रहते थी। इसी प्रकार से विदेशी आगन्तुकों में एलक्सिस सेंडरसन तथा मार्क ड्यक्स्की प्रसिद्ध हैं।

**प्रमुख कृतियाँ :-**

स्वामी लक्ष्मण जी महाराज शैवदर्शन के सिद्धहस्त आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने शिवसाधना एवं तपस्या के बल पर परम शिव का आत्म साक्षात्कार करते हुए परा शक्ति का विस्तृत रूप में विवेचन किया है। इनके द्वारा शैवशास्त्रों का अध्ययन एवं अध्यापन सहज एवं सरल रूप में किया गया। विदेशी अध्येताओं ने इनके सानिध्य में तन्त्रालोक जैस महान् ग्रन्थ का अध्ययन किया है। स्वामी लक्ष्मण जी महाराज द्वारा काश्मीर शैवदर्शन के अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थों का लेखन किया गया है। जिनमें प्रमुख ग्रन्थों का वर्णन यहाँ प्रस्तुत है।

1. त्रिकशास्त्र रहस्य प्रक्रिया (हिन्दी अनुवाद सहित)
2. शिवसूत्रविमर्शिनी (अंग्रेजी व्याख्या सहित)
3. तन्त्रालोकम्, प्रथम आह्निक (हिन्दी व्याख्या सहित)
4. अभिनवगुप्त कृत भगवत् गीतार्थ संग्रह (संस्कृत टीका सहित)
5. विज्ञानभैरवम् (अंग्रेजी व्याख्या सहित)
6. शिवस्तोत्रावली (हिन्दी व्याख्या सहित)
7. कुण्डलिनीविविज्ञानरहस्य (अंग्रेजी)
8. वातूलनाथ सूत्र (अंग्रेजी)
9. साम्बपञ्चाशिका (रहस्यात्मक व्याख्या सहित)

10. क्रमनयप्रदीपिका (हिन्दी व्याख्या सहित)

11. पञ्चस्तवी (विशेष अनुवाद सहित)

12. Secret Supreme (अंग्रेजी)

इस प्रकार से स्वामी लक्ष्मण जी महाराज ने प्रसिद रचनाओं लेखन करके काश्मीर शैवदर्शन के साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया।

**अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्यिक योगदान :-**

स्वामी लक्ष्मण जी द्वारा काश्मीर शैव ग्रन्थों पर अनेकानेक व्याख्यान, शोधपत्र, प्रतिलेख, हस्तलिखित पत्र तथा अनुवादिक कार्यों में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। जिनमें काश्मीर शैवदर्शन में आत्मबोध, मौखिक व्याख्यान, काश्मीर शैवदर्शन के प्रकाश में भगवद्गीता (अनुवादित) तथा स्पन्दकारिका एवं सप्तदसन्दोह का अनुवाद कार्य प्रमुख है। इनके द्वारा काश्मीर शैवधर्म की पूजा संस्कृति तथा दैनिक पूजा पद्धति पर श्लोक एवं स्तोत्रपाठ आदि का लेखन किया गया। इस प्रकार से बीसवीं शताब्दी के शैवाचार्यों में स्वामी लक्ष्मण जी महाराज का साहित्यिक योगदान वर्तमान समय में प्रासंगिक है। इनका स्वाध्यायकाल में अध्ययन करना चाहिए ।

**उपसंहार (Conclusion) :-**

बीसवीं एवं इक्कीसवीं शताब्दी में संस्कृत साहित्य दिन प्रतिदिन विशाल स्वरूप को ग्रहण कर रहा है। इसमें महाकाव्य साहित्य, आधुनिक साहित्य, खण्ड साहित्य एवं बाल साहित्य, यात्रा वृतान्त एवं आधुनिक चिन्तन आदि विषयों का समावेश अबाध गति से निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है।

परन्तु पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित साहित्य में अनुसंधान एवं सर्वेक्षण की सम्भावनाएँ अधिक व्याप्त हैं। इस संदर्भ में काश्मीर शैव दर्शन की बीसवीं शताब्दी में लिखित साहित्य प्रमुख है। यह ज्ञान एवं कर्म तथा उपासना पर आधारित है। इसमें सौन्दर्यात्मकता तथा आध्यात्मिकता का साक्षात्कार सहज ही परिलक्षित होता है। इसमें धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं आध्यात्म परक विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसके अध्ययन से अधोलिखित ज्ञानप्रद विषयों का विकास पूर्णत: सम्भव है।

1. जीवन में आध्यात्मिकता का विकास ।

2. जीवन में यौगिक क्रियाओं का विकास ।

3.जीवन में धर्म एवं संस्कृति के प्रति समर्पण भावों का विकास।

4. सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक विषयों का विकास ।

5. तन्त्र साहित्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास।

इस प्रकार से यह दर्शन मानव समाज को नूतन प्रेरणा प्रदान करता है। अत: छात्र जीवन में इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिए। इसमें शोध की अपार सम्भावनाएँ उलब्ध हैं। काश्मीर शैवदर्शन का अध्ययन मानव को शिव के प्रति आस्थावान बना देता है। यद्यपि इसके सिद्धान्तों को समझना आसान कार्य नही है। उनका गुरुमुख से ही अध्ययन करना चहिए। इसके लिए सरस्वती कृपा आवश्यक है। स्वामी लक्ष्मण जी महाराज ने स्वयं पञ्चस्तवी ग्रन्थ में उल्लेख किया है-

"व्योमेति बिन्दुरिति नाद इतीन्दुलेखा
रूपेति वाग्भवतनूरिति मातृकेति ।
नि:ष्यन्दमानसुखबोधसुधास्चरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम्" ॥

अर्थात् हे देवी, आप भाग्यशाली भक्त जनों के हृदय में, अपने परमानन्द-बोध-स्वरूप से प्रवाहित होती हुई परमाकाशा रूप से, प्रकाश-रूपता से, विमर्श-रूपता से, चन्द्रकला रूपता से सरस्वती के रूप से तथा पूर्णाहन्ता रूप मातृका के स्वरूप से विकसित होती है।

अन्त में कहा जा सकता है कि "काश्मीर शैवाचार्य स्वामी लक्ष्मण जी महाराज का साहित्यिक योगदान" विषय पर केन्द्रित पत्र विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों को प्रेरणा प्रदान करने में सहायक सिद्ध होगा।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)


1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका, उत्पलदेव, सं० मधुशुदन कौल शास्त्री,काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १९२१
2. तन्त्रालोकम्, अभिनवगुप्त, भाग, १-२, राजानक जयरथ कृत विवेक व्याख्या सहित,परमहंस मिश्र (हिन्दी भाष्य एवं सम्पादक), वाराणसी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, १९२२-९३
3. तन्त्रसार:, अभिनवगुप्त, राजानक जयरथ (व्याख्याकार) सं० मधुशुदन कौल शास्त्री, श्री नगर, काश्मीर सीरिज आफ टेक्स्ट्स एण्ड स्टडीज, १९१८
4. तन्त्रसार: , अभिनवगुप्त, परमहंस मिश्र (अनुवादक एवं संपादक) वाराणसी, शक्ति प्रकाशन , १९८५
5. परमार्थसार:, कमला द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -१९८४
6. स्पन्दकारिका, श्यामाकान्त द्विवेदी, आनन्द, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
7. शिवदृष्टि, सोमानन्द,राधेश्याम चतुर्वेदी (हिन्दी व्याख्याकार) वाराणसी संस्कृत संस्थान, १९८६
8. श्रीपञ्चस्तवी, ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज, ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, श्रीनगर , २००८
9. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, क्षेमराज, शिवशंकर अवस्थी, शास्त्री, (व्याख्याकार एवं सम्पादक), वाराणसी , चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस,१९७०
10. विज्ञानभैरव, श्रीक्षेमराजाचार्य विरचित विवृतिभागोत्तर श्री शिवोपाध्याय विरचित, श्रीबापूपाल आँजना विरचित कारिकानुवाद सहित, हिन्दी व्याख्या सहित, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान ,दिल्ली
11. काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणाएँ , नवजीवन रस्तोगी,प्रथम संस्करण, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २००२
12. काश्मीर इतिहास और संस्कृति, कुसुम दत्ता भूरिया, प्रतिभा प्रकाशन नई दिल्ली , २००६
13. श्रीकाश्मीर शैवदर्शन, बल्जिनाथ पण्डित, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, रणवीर परिसर, जम्मु , २००५
14. A Historical Philosophical study, Pandey, K.C. Chaukhamba Sanskrit Series, Varanasi-1963
15.https://en.wikipedia.org/wiki/Lakshman_Joo#DVD_recordings_in_English

# बीसवीं शताब्दी मे संस्कृत गद्य साहित्य शिवराज विजय संस्कृत का प्रथम उपन्यास–

**किरण माला**

संस्कृत विभाग, मगध महिला कॉलेज, पटना युनिव्हर्सिटी, पटना

k.mala.02@gmail.com

**सारांश**

*संस्कृत साहित्य की अजस्त्र धारा वैदिक काल से ही निर्बाध गत्ति से प्रवाहित है। इसका प्रवाह क्रमिक रूप से अधिक तीव्र एवं विस्तृत होता गया। संस्कृत गद्य की काव्य धारा भी वैदिक वाङमय से उद्भूत है । कालांतर में सुबन्धु , दंडी, बाण भट्ट के समान प्रतिभा शाली कवियों एनई यूएस गद्य विधा को समृद्ध कर अपनी रचनाओं को कालजयी बना दिया । इन कवियों के साहित्य चारुत्व एनई अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृत अनुरागियों को अपनी ओआर आकृष्ट किया । इन विद्वानों ने इन ग्रन्थों का अध्ययन, नमन करके इस पर अपनी अनुभूक्तियाँ भी दी । गद्य साहित्य के इसी परंपरा मे बीसवीं सदी के आरंभिक काल की रचना है पं० अम्बिका दत्त व्यास रचित ऐतिहासिक गद्य काव्य शिवराज विजय ।*

***मुख्य बिन्दु :*** *आधुनिक, ऐतिहासिक, संस्कृत गद्यकाव्य, प्रथम उपन्यास.*

## परिचय :

पं. अम्बिका दत्त व्यास का जीवन काल 1915 से 1957 तक का है। अल्प काल मे ही व्यास जी ने प्राय: अस्सी ग्रन्थों की रचना की थी। शिवराजविजय व्यास जी की सर्वप्रिय एवं सर्वोत्कृष्ट रचना है। यह ग्रंथ आकार प्रकार में न तो विशाल है, और न ही पाण्डित्यपूर्ण। तथापि यह अपने युग का प्रतिनिधि गद्यकाव्य है। शिवराज विजय तीन विरामों एवं द्वादश नि:श्वासों मे विभक्त है। यह ग्रंथ अपने में कवि के जीवन की समग्र अनुभूतियों को, जनमानस के विचारों को, भारतवर्ष की सांस्कृतिक गरिमा को, महाराष्ट्र केसरी शिवाजी की राष्ट्र भक्ति, और तत्कालीन मुगल शासकों की क्रूरता आदि तत्वों को समाहित किए हुये है।

## शिवराज विजय की औपन्यासिकता :

संस्कृत साहित्य में कथा आख्यायिका आदि विविध रूपों में गद्य साहित्य लिखे जाते रहे हैं जो कृष्णमाचार्य के अनुसार एक ही विधा के दो नाम हैं । संस्कृत में व्यास जी से पहले उपन्यास का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था यद्यपि नाट्यशास्त्र आदि ग्रन्थों में उपन्यास शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है लेकिन इस अर्थ में नहीं – "वज्राम् पुष्पमुपन्यास वर्ण संहार" इत्यादि । 'शिवराजविजय' को स्वयं व्यास जी ने ऐतिहासिक उपन्यास कहा है क्योंकि 'उपन्यास' की पाश्चात्य विद्या में यह ढला हुआ है। यह विद्या व्यसजी को बंगला उपन्यास कारों से मिली थी। गद्यकाव्य मीमांसा नामक ग्रंथ में इन्होंने लिखा है उपन्यासपदेनापि तदेव परिकथ्यते ।

यथा कादम्बरी याद्वा शिवराजविजयो मम ॥

संस्कृत की प्राचीन व्यवस्था के अनुसार इसको आख्यायिका कह सकते हैं ।

पं. अम्बिका दत्त व्यास जी संस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाओं के विद्वान थे । व्यसजी के गद्यकाव्य मीमांसा से यह प्रतीत होता है की संस्कृत मे उपन्यास के अभाव से वो दुखी थे और इसकी पूर्ति हेतु शिवराजविजय की रचना के लिए प्रवृत हुये । इसप्रकार संस्कृत साहित्य की गद्यकाव्य परम्परा मे शिवराजविजय एक नयी एवं आधुनिक काव्य -विधा का होने के कारण उन्हीं मानदंडों के अनुसार देखने योग्य है ।

आधुनिक समालोचनात्मक दृष्टि से उपन्यास के छ : तत्व माने गए हैं –

1. कथानक
2. देशकाल
3. पात्र
4. रचना शैली
5. संवाद योजना
6. उद्देश्य

**ऐतिहासिक एवं कवि प्रसूत कथावस्तु :**

शिवराजविजय की कथावस्तु भारतीय इतिहास से ली गयी है। इसमे शिवाजी के राजनीतिक जीवन को आधृत कर काव्य रचना पुष्पित और पल्लवित हुई है। तत्कालीन मुगल शासक और औरंगजेब के द्वारा बीजापुर के सुल्तान अफ़जल खाँ को शिवाजी के राज्य पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए लगाया गया । अफ़जल खाँ शाइस्ता खाँ को शिवाजी के पास भेजता है।

शाइस्ता खाँ सन्धि के बहाने शिवाजी को बन्दी बनाने का प्रयास करता है लेकिन सफल नहीं होता । अफ़जल खाँ को भी सफलता नहीं मिलती और प्राण रक्षा के लिए भागना पड़ता है।

इसके बाद औरंगजेब शिवाजी को वश मे करने के लिए जय सिंह को भेजता है। जय सिंह पर भरोसा कर शिवाजी औरंगजेब से मिलना स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन औरंगजेब धोखे से शिवाजी को बन्दी बना लेता है । अपनी प्रखर बुद्धि और युक्ति से शिवाजी मिठाई की टोकरी मे बैठ कर कैद से आज़ाद हो जाते हैं।

पं. अम्बिका दत्त व्यास जी ने इस मूल कथावस्तु की रक्षा करते हुये इसे बहुत ही सुंदर और आकर्षक साहित्यिक सरसता प्रदान की है। काव्य मे विन्यस्त प्रकृति चित्रण पूर्णत : कविकृत है। ब्रह्मचारी गुरु ,की आश्रम व्यवस्था,चिरकाल से समाधिस्त मुनि का प्रकट होना,यवन युवक के करपंजर से मुक्त कन्या का प्रसंग,शिवाजी के प्रति रोशन आरा का एकपक्षीय प्रेम, सौवर्णी और रघुवीर का प्रेम प्रसंग, वीरेन्द्र सिंह और खड्ग सिंह की समुद्री यात्रा, देव शर्मा पुरोहित द्वारा सौवर्णी का लालन-पालन, वीरेन्द्र सिंह, गौर सिंह और श्याम सिंह का वर्णन ये सभी वृतांत कवि कल्पना प्रसूत हैं। कवि ने इन सभी घटनाओं का ऐसा ताना – बाना बुना है की ये काल्पनिक लगती ही नहीं। समग्र पत्रों का समुद्री यात्रा के माध्यम से विखरना, शिवाजी से सबको जोड़ना और एएनटी मे सभी पत्रों को एकसाथ मिला देना, कवि ने ये सब बड़ी ही कुशलता से किया है। काव्य मे अनेक घटनाओं का समायोजन किया गया है। सभी घटनाएँ पृथ्क – पृथ्क अवश्य हैं लेकिन सभी एक ही लक्ष्य समबद्ध हैं। यह लक्ष्य है शिवाजी के चारित्रिक औदात्य का प्रतिपादन । व्यासजी ने एक ऐतिहासिक कथावस्तु को साहित्यिक रंग देकर कथानक को अत्यंत आकर्षक और रोचक बाना दियाहै। कथा निर्बाध रूप से अग्रसर होती है, कहीं भी गतिरोध नहीं होता। अपने इन्ही साहित्यिक विशिष्टताओं के कारण इसे संस्कृत साहित्य का प्रथम उपन्यास भी कहा गया है।

**देशकाल :**

उपन्यास के पत्रों की क्रियाएँ तथा संवाद आदि स्थान विशेष तथा देश में घटित होते हैं । काव्य में यही देशकाल कहलाते हैं । ऐतिहासिक उपन्यासों मे देशकाल की अपेक्षा तदयुगीन सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि के चित्रण का महत्व अधिक होता है। व्यासजी ने शिवराजविजय में इन बातों का ध्यान पूरी तरह से रखा है ।

**पात्र :** काव्यों मे दो तरह के पत्रों की योजना उपलब्ध होती है – प्रतिनिधि पात्र और व्यक्तित्व प्रधान पात्र । जब कोई कोई

पात्र किसी वर्ग, जाती, अथवा समान भावनात्मक समूह का प्रतिनिधित्व करता है तब वह प्रतिनिधि पात्र कहलाता है और जब कोई पात्र अपनी निजी विशेषता को लेकर ही कथानक मे प्रवेश करता है तब वह व्यक्तित्व प्रधान पात्र कहलाता है । व्यसजी के प्रत्येक पात्र प्राय : प्रतिनिधि पात्र के रूप में चित्रित हैं । मुख्य पात्र शिवाजी तथा उनके सभी साथी देश-प्रेम, जाती-प्रेम, एवं धर्म – प्रेम से युक्त हैं । ये सभी पात्र एक समान भावना वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

रचना शैली : काव्यकला अंबिकदत्त व्यास की काव्य काला मौलिक है । परंपरा के बन्धन मे बंधी हुई नहीं । विषय की प्रस्तुति, अलंकार प्रयोग,प्रकृति चित्रण, पत्रों के चरित्र चित्रण की काला भी किसी अन्य कवि से प्रभावित नहीं है । विभिन्न विषयों पर विचार भी मौलिक हैं । पं० अंबिका दत्त व्यास ने अपना काव्य मार्ग स्वयं तय किया है, स्वयं प्रशस्त किया है । स्वयं उस मार्ग पर चलकर पूर्ण सफलता भी प्राप्त की है ।

**काव्यकला :**

व्यास जी की भाषा प्रसंगों के अनुकूल अपनी छटा विखेरती है। यह सरल सुबोध और मधुरता से पूर्ण है –

अथ कन्ये ! मा भैषी : पुत्री ! त्वाम मातृ : समीपे प्रापिष्याम :, दुहित:! खेदम् मा वह, भगवती!

अम्बिका दत्त व्यास ने दुर्दशा या व्यग्रता वर्णन के लिए चूर्णिका शैली का प्रयोग किया है जैसे की बाणभट्ट ने 'शुकनाशोपदेश' में किया है –

महात्मन् ! क्वाधुना विक्रम राज्यम् ? वीर विक्रमस्य तु भारत भुवम विरहस्य गत्स्य वर्षानां सप्तदश शतकानि व्यतितानी । क्वाधुना मंदिरे मंदिरे जय ध्वनि:? क्व संप्रति तीर्थे घण्टा नाद: ? [2]

इसी प्रकार प्रसंगानुकूल दीर्घ समासिक पदबन्धों से युक्त क्लिष्ट भाषा का प्रयोग भी स्थान स्थान पर देखने को मिलता है – तत : पश्चाच्चापरोऽवतरथे व्यूढकङ्कटामा मास्फोटित घोटकसताण।म्....... । [3]

गद्यकाव्य मे महाकवि बाणभट्ट एवं पद्य काव्य में महाकवि श्रीहर्ष अपने पदलालित्य के लिए विख्यात हैं । शिवराज मे ललित पदविन्यास का आधिक्य तो नहीं है पर ललित पदयोजना कई जगह देखने को मिलती है -

चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य,कुंडलमखंडल दिश:,दीपको ब्रह्माण्ड भाण्डस्य, प्रेयान कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदलस्य,सूत्रधार : सर्व व्यवहारस्य,इनश्च दिनस्य। [4]

कवि अंबिका दत्त व्यास भाषा के धनी हैं । इनके सम्पूर्ण काव्य में अनुप्रास जन्य पदलालित्य की मनोहर छटा सर्वत्र विद्यमान है । पदों की ध्वन्यात्मकता पाठक के मन में संगीत ध्वनि की तरह गूंजने लगती है ।

कवि ने नए नए शब्दों का प्रयोग कर भाषा में लालित्य की योजना की है । झरना से उत्पन्न ध्वनि को बताने के लिए झर्झर शब्द का प्रयोग किया है –

दक्षिणतश्चैको निर्झर: झर्झर ध्वनि ध्वनित दिगंतर : .....। [5]

रत्न के चमत्कार को वर्णित करने के लिए – रत्न निचम पञ्चचाक धव्यम्.......... । [6]

वर्षा करते हुये मेघ पटल से उत्पन्न ध्वनि का वर्णन करते हुये लिखा है –

अथऽकस्मात् सतडतडञ्झ शब्दम् वर्षन् कश्चन मेघ खंड उपरिष्यत् समायात : .....इत्यादि ।[7]

प्रेयसी सौवर्णी ने प्रीतम रघुवीर सिंह को देखा – इस भाव की अभिव्यक्ति में बड़ी ही ललित भाषा का प्रयोग किया गया है जो दर्शनीय है –

भद्रे ! क्षमस्व वारमेकमवलोकयैतम् त्वदर्पित जीवनम् इति मधुरम्-मधुरम् कर्णरसायनम् वचना माकर्ण्य नयने उन्मील्य, तमेव जीवनाऽऽधारम् ध्यानविहित साक्षातकारम्।

विलुलिताश्रु धारम् संसार –सारं प्राप्तिपरं पीडापारावारम्,अवहितवचन पीयूषाऽऽसार रघुवीर सिंहमदर्शत् ।[8] यह प्रसंग बहुत ही मधुर है , श्रृंगारपरक है । ऐसे मधुर भाव की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का मधुर होना अपेक्षित है ।सुकोमल शब्दों के प्रयोग से भाषा अत्यंत ललित हो गयी है । प्रेयसी के हृदय का प्रेम और उत्कंठा सहज ही अनुभूत हो जाती है ।

कवि ने किसी वस्तु से उत्पन्न होने वाले ध्वनि के लिए वैसे ही शब्दों का प्रयोग किया है जिसके परिणाम स्वरूप वे शब्द ध्वनियों के बिम्ब सृजन में पूर्णत : सक्षम हैं । यथा –

रथ्यासु क्षणे- क्षणे सखऽखऽाशब्दम् पुष्परथा: प्रधावन्ति । [9]

धूम्रपान करते समय निकलनेवाली आवाज़ का वर्णन – सगुऽगुऽाशब्दम् ताम्रधूमाकर्षन् .....[10] व्यासजी ने ऐसे अनेक नए शब्दों का प्रयोग किया है जो व्यवहार में नहीं दिखाई देते । ऐसे कई

शब्द अमरकोष से लिए गए हैं । यथा – कोकनद , निष्कुटक , अभिक : , क्रमुकफल , गोस्तनी इत्यादि । ऐसे शब्दों का बाहुल्य देखने को मिलता है । इसी प्रकार नामधातुओं का भी सुंदर प्रयोग हुआ है - स्वयमेव त्वं दीर्घदावदहने पतङ्गयितोंऽसि ।

कहीं कहीं पर लोकोक्ति का प्रयोग भी मिलता है - घृतेन स्नातु भावद्रसनय इति व्यहरन् शिविर मंडलम् प्रविवेश (आपके मुँह मे घी शक्कर ) । [11]

**संवाद-योजना :**

प्राचीन महाकाव्यों मे अथवा सम्पूर्ण श्रव्य काव्य में संवाद का महत्व नहीं था । काव्य-शास्त्रियों ने भी संवाद को काव्य के आवश्यक तत्व के रूप में नहीं स्वीकारा था परंतु आधुनिक युग मे उपन्यास आदि में संवाद के महत्व को स्वीकार किया गया है । हडसन के अनुसार संवाद उपन्यास के सर्वाधिक आनंददायी तत्वों मे से एक है । व्यसजी ने शिवराजविजय मे नाटकीय एवं प्रभावशाली संवादों की योजना करके संस्कृत गद्यकाव्य को एक नयी दिशा प्रदान की है । यथा कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं –

भद्रे !का त्वं?वृत : समायात ?किमीहस ?किं विवक्षसि ?कथं एकाकिनी वनेषु भ्रमन्ती न लज्जसे ?न वा बिभेषी ?... इत्यादि । [12]

सन्यासी – सत्यं क्षांतोंऽयमपराध: ,परमधावधि सन्यासिन : ,ब्रह्मचारिण :,पंडिता,..... । [13]

**उद्देश्य :**

संस्कृत काव्यशास्त्र के परंपरानुसार काव्य के उद्देश्य –यश प्राप्ति ,धन प्राप्ति ,व्यवहार ज्ञान ,दुख विनाश ,आनंद प्राप्ति तथा उपदेश माने गए हैं । प्राय : इन्ही उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए काव्य रचना की जाती थी । लेकिन व्यास जी का उद्देश्य में कुछ भिन्नता और नवीनता दिखाई देती है । इन्होंने परंपरागत उद्देश्यों को रखते हुये भी देश जाती , धर्म के गौरव की प्रतिष्ठा और इससे जनमानस को आप्लावित करना अपना मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया है ।

**निष्कर्ष :**

पं. अंबिकदत्त व्यास ने शिवराजविजय के सम्पूर्ण वृतांत की प्रस्तुति के लिए धर्म को पृष्ठ भूमि मे रखा है । इनके सभी सहयोगी पात्र ब्रह्मचारी या सन्यासी वेशधारी हैं । दिल्ली मे सभी सहयोगी आवश्यकतानुसार मुस्लिम फ़कीर के वेश मे घूमते हैं । इस प्रकार धर्म के उन्नायक शिवाजी ने धर्मका आश्रय लेकर अपने धर्म (कर्तव्य )का निष्ठापूर्वक पालन कर लक्ष्य प्राप्त किया है । यह कवि अंबिकादत्त व्यास जी की काव्य काला की मौलिकता है । निष्कर्षत: वर्ण – विषय के संकलन, काव्यविधा के चयन ,विषय प्रस्तुति ,अभिव्यंजना पद्धति , सौंदर्य निरूपण ,सूक्ष्म भावों की सफल अभिव्यक्ति इत्यादि में

सर्वत्र कवि की मौलिकता दृष्टिगत होती है । अपनी इन सारी विशिष्टताओं के आलोक में 'शिवराज विजय 'को गद्यकाव्य के साथ –साथ ऐतिहासिक उपन्यास कहना भी समीचीन है ।

अत : 'शिवराजविजय' बीसवीं शताब्दी का एक सफल संस्कृत उपन्यास है ।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :**

1) प्रथम शिवराजविजय / निश्वास
2) वही
3) 1/1 पृ० 29
4) शिवराजविजय /प्रथम निश्वास
5) शिवराजविजय 3/12 पृ ० 342-345
6) 1/1 पृ ० 7
7) 2/7 पृ ० 167
8) 2/10 पृ ० 132-133
9) 2/7 पृ ० 163
10) 1/2 पृ ० 112
11) 1/4 पृ ० 162-163
12) ½ पृ 52

**संदर्भ –ग्रंथ**

1) 1 संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – बाबुराम त्रिपाठी ,विनोद पुस्तक मंदिर आगरा द्वितीय संस्कारण ।
2) 2 संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय ,शारदा निकेतन वाराणसी ।
3) 3 सामान्य अध्ययन ,-राजनारायण पाण्डेय ,प्रयाग पुस्तक भण्डार इलाहाबाद ।
4) 4 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास- डा० जय शंकर मिश्र ,बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी ,पटना ।
5) 5 आधुनिक काव्य मे सौंदर्य भावना-कु ० शकुंतला शर्मा –सरस्वती मंदिर, बनारस ।

# "अभिराज राजेन्द्र मिश्र की कथाओं में लोकचेतना का उत्स"

**प्रतिभा शर्मा**

Pratibhasharma7575@gmail.com

**शोधसार**

*भूमिकाः-"साहित्य समाज का दर्पण हैं" यह उक्ति साहित्य क्षेत्र में सर्व विदित एवं सर्व मान्य है। समाज में जो भी घटित होता है वह साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। कवि की अनुभूति ही काव्यरूप में अभिव्यक्तिपाकर पल्लवित और पुष्पित होती है। यह अभिव्यक्ति किसी भी भाषा में हो सकती है ।भाषा केवल माध्यम है, प्रमुखता तो सदैवभावों की होती है।भाव ही मुख्य है, परन्तुचूं कि यह प्रमाणित है कि संसार की समस्त कृतियों में आद्य कृति ऋग्वेद है तो इस से इस बात की प्रामाणिकता भी स्वतः सिद्ध हो जाती है कि प्राचीन तमज्ञान विज्ञानमय कोष संस्कृत भाषा में ही विद्यमान है।*

*साहित्य परम्परा एवं काव्य भेदः-विश्वनाथ ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"और पंडित राज जगन्नाथ ने 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् 'कहकर जहाँ एक और रमणीयता और रसात्मकता की बात को वर्णित किया वहीं काव्य को लोकानंद की दृष्टि से दो भागो में भी बाँट दिया।प्राचीन शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण अद्यतन होता रहा और काव्य के भेदों का निरुपण दृश्य काव्य एवं श्रव्य काव्य के भेद से क्रमशः रुपक – उपरुपक तथा गद्य - पद्य और मिश्रित (चम्पू) के रूप में किया गया ।गद्य को प्राचीन आचार्यो ने कथा एवं आख्यायि का के रूप में विभाजित किया । कथा ओं की परम्परा मानव मन के कौतूहल और जिज्ञासा को शान्त करते हुए अत्यन्त सहज परन्तु अदभुत रूप से धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों को सिखाने का कार्य करती है।*

*कथा सृजन परम्पराः- संस्कृत साहित्य सृजन यात्रा में अर्वाचीन काल में भी प्राचीन काल की तरह निरन्तर उत्कृष्ट साहित्य सर्जना के दर्शन होते हैं जिन में भट्टमथुरानाथ शास्त्री की कथानिकुंज, कलानाथ शास्त्री की कथावल्ली, भागीरथी त्रिपाठी की कथा संवर्तिका, माधवाचार्य की कथा शतक, पंडित शिवदत्त शर्मा की अभिनव कथा निकुंज, कैलाशनाथ द्विवेदी की कथा कलिका, अभिराज राजेन्द्र मिश्रजी की राङगडा, इक्षुगन्धा, पुनर्नवा, छिन्नमस्ता, चित्रपर्णीतथा कान्तार कथा का अत्यधिक महत्त्व रहा है*

*अभिराज राजेन्द्र मिश्र का कथा सृजन एवंलोक चेतनाः- अभिराज राजेन्द्र मिश्र का सम्पूर्ण कर्तृत्व लोक चेतनामय है। वाणी त्रिवेणी के प्रवाह में सिद्ध हस्त इन्होंने सभी विधाओं में लोककल्याण के पावन लक्ष्य को सम्पादित करने का अथक प्रयास किया है लेकिन जितना प्रभाव कथा जनमानस पर डालती है उतना अन्य विधाओं की क्लिष्टता के कारण प्रभाव शीलता की न्यूनता रहती है ।कथाओं के माध्यम से अभिराज राजेन्द्र मिश्रजी ने लोक के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पक्षों को तथा स्त्री व दलित के प्रति संवेदनात्मक पक्ष को सजगता से उभारा है ।उनकी लोक चेतना को विभिन्न भागों में वर्गीकृतकर के समझा जासकता है।उनके जीवन दर्शन, मूलमंत्र, उपादेयता, मौलिकता, प्रासंगिकता, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, नारी चेतना, दार्शनिक, शास्त्रीय, व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक, प्रकृति चित्रण आदि के सम्बन्ध में जैसा दृष्टिकोण मिश्रजी ने कथासाहित्य के संदर्भ में प्रस्तुत किया है वह कथा के लिए समुन्नत और समी चीनही है । जिसका विश्लेषण शोध पत्र में विस्तार से दिया गया है*

## प्रमुख भूमिकाः-

"साहित्य समाज का दर्पण हैं" यह उक्ति साहित क्षेत्र में सर्वविदित एवं सर्वमान्य है। समाज में जो भी घटित होता हैवह साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। कवि की अनुभूति ही काव्यरूप में अभिव्यक्ति पाकर पल्लवित और पुष्पित होती है। यह अभिव्यक्ति किसी भी भाषा में हो सकती है। भाषा केवल माध्यम है, प्रमुखता तो सदैव भावों की होती है। भाव ही मुख्य है, परन्तु चूंकि यह प्रमाणित है कि संसार की समस्त कृतियों में आद्य कृति ऋग्वेद है तो इससे इस बात की प्रामाणिकता भी स्वतः सिद्ध हो जाती है कि प्राचीनतम ज्ञानविज्ञानमय कोष संस्कृत भाषा में ही विद्यमान है।

## साहित्य परम्परा एवं काव्य भेदः-

संस्कृत साहित्य का भण्डार विशाल है। वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, वेदांग, पुराण, रामायण, महाभारत जैसे विशाल नीतिगत ग्रंथ, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वात्स्यायन का कामशास्त्र, दर्शन में मोक्षशास्त्र ओर सांसारिक समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले अन्यान्य शास्त्र संस्कृत साहित्य में विराजमान है। संस्कृत साहित्य जीवन के श्रेय और प्रेय की पूर्ति करने वाला रहा है। विश्वनाथ ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" और पंडितराज जगन्नाथ ने 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' कहकर जहाँ एक और रमणीयता और रसात्मकता की बात को वर्णित किया वहीं काव्य को लोकानंद की दृष्टि से दो भागो में भी बाँट दिया। प्राचीन शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण अद्यतन होता रहा और काव्य के भेदों का निरुपण दृश्यकाव्य एवं श्रव्यकाव्य के भेद से क्रमशः रुपक-उपरुपक तथा गद्य-पद्य और मिश्रित (चम्पू) के रूप में किया गया।

काव्य के भेदों का निरूपण करते हुए पुनः गद्य काव्य को चार भागों मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिका, प्राप्य एवं चूर्णक में विभाजित किया गया। दूसरी तरफ पद्य काव्य के भेद महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं मुक्तक किए गए।

प्रबन्धात्मक गद्य को प्राचीन आचार्यो ने कथा एवं आख्यायिका के रूप में विभाजित किया। इस विभाजन को प्रबन्धकल्पनाकथा एवं आख्यायिका इतिवृत्ताश्रिता के रूप में परिभाषित किया। इस तरह संस्कृत साहित्य के इस विभाजनात्मक अवलोकन से प्रतीत होता है कि साहित्य सर्जना में कथाओं का महत्त्व क्षीण नहीं हो सकता, जिसका कारण यह है कि कथाओं की परम्परा मानव मन के कौतूहल और जिज्ञासा को शान्त करते हुए अत्यन्त सहज परन्तु अदभुत रूप से धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों को सिखाने का कार्य करती है। कथा साहित्य के बीज वैदिक काल में ऋग्वेद में मानवामत्र्यकथा एवं छान्दोग्योपनिषद के उद्गीथाश्वाख्यान जैसे संवादसूक्तों एवं अन्य स्तुतिपरक सामान्य सूक्तों में विभिन्न देवों के मनोरंजक एवं उपदेशपरक आख्यानों के रूप में मिलते हैं। इन आख्यानों की सूचना सामान्य रूप में ऋकसंहिता में तथा विस्तार से यास्क के निरुक्त में, शौनक के वृहद्देवता में, कात्यायन-सर्वानुक्रमणी की षडगुरुशिष्यप्रणीत् वेदार्थदीपिका व्याख्या में तथा तद्नुसार सायण के वेदभाष्यों में उपलब्ध होती है। पुरूरवा, उर्वशी तथा शकुन्तलोपाख्यान जैसे पौराणिक आख्यानों में कथा विकास यात्रा के अनेक पदचिन्ह परिलक्षित होते हैं।

कथासृजन की इस अनवरत और सतत् प्रक्रिया में पं. विष्णु शर्मा रचित 'पंचतंत्र',नारायण पंडित की 'हितोपदेश' नामक उपदेशपरक कथा संगह, गुणाढ्य की वृहत्कथा, सोमदेव की कथासरित्सागर जहाँ लोककथाओं का प्रतिनिधित्व करता है; वहीं बुधस्वामी द्वारा वृहत्कथाश्लोक संग्रह एवं कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा वृहत्कथामंजरी कथा साहित्ययात्रा में मील का पत्थर सिद्ध होने वाली है । जो अर्वाचीन काल में भी कथा साहित्य के लिए आदर्श स्वरूप है।

**कथा सृजन परम्पराः-**

कथा सृजन की परम्परा मानव कल्याण के लिए भी बहुमूल्य सिद्ध हुई है जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण उदयसुन्दरीकथा, बेतालपंचविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका, शुकसप्तति, पुरुषपरीक्षा, कथार्णव, भोजप्रबंध जैसे महनीय ग्रन्थरत्न साहित्य में देखा जा सकता है।

संस्कृत साहित्य सृजन यात्रा में अर्वाचीन काल में भी निरन्तर उत्कृष्ट साहित्य सर्जना के दर्शन होते हैं जिनमें भट्ट मथुरानाथ शास्त्री की कथानिकुंज, कलानाथ शास्त्री की कथावल्ली, भागीरथी त्रिपाठी की कथासंवर्तिका, माधवाचार्य की

कथाशतक, पंडित शिवदत्त शर्मा की अभिनव कथानिकुंज, कैलाशनाथ द्विवेदी की कथाकलिका, अभिराजराजेन्द्र मिश्रजी की राङगडा, इक्षुगन्धा, पुनर्नवा, छिन्नमस्ता, चित्रपर्णी तथा कान्तारकथा का अत्यधिक महत्त्व रहा है।

**अभिराज राजेन्द्र मिश्र का कथासृजन एवं लोकचेतनाः-**

अभिराज राजेन्द्रमिश्र आधुनिक संस्कृत साहित्य के पुरोधा हैं, एक संवेदनशील साहित्यकार हैं, समाज के सूक्ष्म अध्येता हैं। मानवता के पक्षधर आपने कथासाहित्य को अपनी अन्तश्चेतना से लोक की पीड़ा, संवेदना, समस्या, अनुकूलता और प्रतिकूलता को समाज के समक्ष व्यावहारिक उदाहरणों से प्रस्तुत कर दिया है। लोकचेतना का तात्पर्य लोक के प्रति चेतना है। 'लोकः' पद व्याकरणिक दृष्टि से लुक् धातु से भावार्थक घ प्रत्यय से निष्पन्न होता है। 'लोक्यते असौ इति लोकः' इसके अनुसार लोक का अर्थ दुनिया, भूलोक, मानवजाति, प्रजा, समुदाय, क्षेत्र सामान्य जीवन, सामान्य व्यवहार, सामान्य लोक प्रचलन, दृष्टि या दर्शन आदि निकलता है।1 इस प्रकार लोक पद से प्रसूत अर्थो से समस्त चराचर जगत लोक की परिधि में आ जाता है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्र' में 'लोक' को काव्य का सारतत्व प्रतिपादित करते हुए कहा है "लोकानुकीर्तनं काव्यम्।[2] लोक का अनुकीर्तन अर्थात् प्रकाशन ही काव्य है। इस तरह से लोक की चेतना ही काव्य की आत्मा है। इसी तरह डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोक को परिभाषित करते हुए कहते हैं "आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं जिनका आचार, विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है"।[3] इसी तरह 'चेतना' पद देखना, सोचना, मनन करना, संकल्प करना, अभिप्रेत या अभिलाषा अर्थ वाली चित् धातु से भावार्थक ल्युट तथा स्त्री प्रत्यय टाप् से निष्पन्न है। जिनके व्युत्पत्तिपरक अर्थ ज्ञान, संज्ञा, प्रतिबोध, समझ, प्रज्ञा, जीवन, प्राण, सजीवता, बुद्धिमत्ता, विचार विमर्श आदि हैं।[4] इस प्रकार दृश्यमान चराचर जगत के प्रति ज्ञान, संज्ञा, बोध, समझ, प्रज्ञा, बुद्धिमत्ता, विचार विमर्श, संवेदनशीलता, सजगता एवं सजीवता को समष्टि रूप में लोकचेतना कहा जा सकता है।

अभिराज राजेन्द्र मिश्र का सम्पूर्ण कर्तृत्व लोकचेतनामय है। वाणीत्रिवेणी के प्रवाह में सिद्धहस्त इन्होंने सभी विधाओं में लोककल्याण के पावन लक्ष्य को सम्पादित करने का अथक प्रयास किया है लेकिन जितना प्रभाव कथा जनमानस पर ड़ालती है उतना अन्य विधाओं की क्लिष्टता के कारण प्रभावशीलता की न्यूनता रहती है। उनके जीवनदर्शन, मूलमंत्र, उपादेयता, मौलिकता, प्रासंगिकता, सांस्कृतिक, आर्थिक,राजनीतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, नारीचेतना, दार्शनिक, शास्त्रीय, व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक, प्रकृति चित्रण आदि के सम्बन्ध में जैसा दृष्टिकोण मिश्रजी ने कथासाहित्य के संदर्भ में प्रस्तुत किया है वह कथा के लिए समुन्नत और समीचीन ही है। "कहानी एक ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना लेखन का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र उसकी शैली, उसका कथाविन्यास सब उसी एक भाव की पुष्टि करते हैं। वह एक ऐसा गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है"।[5]

कथाओं के माध्यम से अभिराजराजेन्द्र मिश्रजी ने लोक के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पक्षों को तथा स्त्री व दलित के प्रति संवेदनात्मक पक्ष को सजगता से उभारा है। उनकी लोकचेतना को वर्गीकृत करके इस तरह समझा जा सकता है।

**सामाजिक चेतनाः-**

साहित्यकार समाज का हृदय होता है वह समाज को महसूस करके समाज के प्रति संवेदनशीलता को अपनी रचनाओं के माध्यम से उभारता है यही उसका मूलमंत्र भी है इसलिए अभिराज राजेन्द्र मिश्रजी ने समकालीन सामाजिक विसंगतियों को अन्तरतम् में महसूस करके समाज के प्रति चिन्ता को इन शब्दों में व्यक्त किया है

"समाजोऽयं न शीलमपेक्षते, न सौन्दर्यमाद्रियते, न वैदुषीं प्रशंसति, न धनवैभवं गणयति, न चरित्रे स्निह्यति, न दुराचाराय कुप्यति। विचित्रा खल्वस्य मूल्यांकनपद्धतिः। स्वार्थानुकूलं अवसरमात्रं निभालयत्ययं समाजः।"[6]

सामाजिक दिशाहीनता, अवसरवादिता एवं संवेदनाहीनता पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं समाज में धनी-निर्धन, सशक्त-निःशक्त, स्त्री-पुरूष के लिए अलग-अलग नियम संचालित हो रहे है। ये ऐसी दशाएँ है जो समाज को खोखला करने के लिए पर्याप्त हैं।

समाजस्तु स्वार्थान्धः क्वचिदमृतमपि विषं धुष्यति क्वचित्पुनर्विषमप्यमृतं किं वेश्यागामिनो मन्दिरप्रवेशान्निवार्यन्ते किं वा पत्नीभिः शरीरभोगान्निषिध्यन्ते? समाजोऽय केवलमसहायानां दोषान् पश्यति। अयन्तु शातयति केवलमार्जवोपेतान् न तावद रावणजरासंधकं सप्रभृतीन्।[7]

'एकचक्र' कथा का नायक सामाजिक विषमता, दारिद्रय की विडम्बना एवं स्वार्थपरक समाज पर प्रहार करते हुए कहता है- सुभगम्मन्यो धनाढ्यो मुक्तहस्ताभ्यां रूप्यकाणि बण्टयति.... परन्तु निर्वराटिकस्य पुनः का कथा ?... स्वर्थान्धोऽयं लोकः। स्वार्थसिद्धय सर्वमंगीकरोति स्वार्थविनाशेन च सर्वं तिरस्करोति। [8]

सांस्कृतिक संक्रमण के परिणामस्वरूप आए समाज के दोहरेपन को कथनी और करनी के अंतर को नैतिकता और भौमिकता के बीच की दुविधा 'चित्रपर्णी' की छोटी-छोटी कहानियां हमारे मस्तिष्क को झकझोर देती है। अभिनयः, द्विसन्धानम्, पितृभक्तिः, काष्ठीभाण्डम्, संस्कृतवर्षम्, पिशाचः,राष्ट्रपति पुरस्कारः, पात्रत्वम्, आत्मविश्लेषणम्, मद्यनिषेधः आदि लघुकथाएं सामाजिक खोखलेपन, दिखावे, आडम्बर, ढोंग एवं पाखण्ड को प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्ति करती है। काष्ठभाण्डम् कहानी में तो अयोग्य व्यक्ति द्वारा पद प्राप्त कर लेने पर सम्पूर्ण अयोग्यताओं के तिरोहित होने का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इस पर प्रहार करते हुए मिश्रजी कहते हैं

सामाजिक दृष्टया या काऽपि पदोन्नतिर्जायते मानवस्य तया पदोन्नतया कामं तस्य पदमुन्नतं भवेत् परन्तु सांस्कारिका गुण दुर्गुणाश्च अयरिवर्तितास्तिष्ठन्ति।[9]

अवर्ण जैसे विषयों को भी मिश्रजी ने प्रसंगानुसार ही उठाया है। अनामिका कहानी में परित्यक्ता को अपनाने के प्रश्न पर उसकी जाति का प्रश्न उत्पन्न होना-

'साम्प्रतं प्रश्नोऽय समुज्रृम्भते यक्ष्सौ जन्मदात्री यवनी उताहो हिन्दुगृहिणी यद्वा शिष्यधर्मावलम्बिनी' ।[10]

मिश्रजी ने विधवाविवाह, पुनर्विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, प्रेमविवाह का समर्थन करते हुए जीने के तरीके और चयनित साथी के साथ जीने के अधिकार को भी अपनी कथाओं यथा भग्नपंजर, मरून्यग्रोध, पुनर्नवा में उकेरने की कोशिश की है।

'सर्वा अपि स्मृतयः सर्वेऽपि महर्षयो विधवा विवाहं समर्थयन्ते।'[11]

इस तरह मिश्रजी की कथाओं में समाज का ताना-बाना स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

**स्त्रीचेतनाः-**

भारतीय संस्कृति स्त्री-पुरुष को समान महत्त्व देती रही है। इन दोनों में से कोई भी श्रेष्ठ या हीन, आगे-पीछे, स्वामी-सेवक, और भोगी या भोग्या के रूप में स्वीकार्य नहीं रहे परन्तु विडम्बना है कि कालान्तर में सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक व राजनैतिक कारणों से स्त्री मनुष्यता के स्तर से हटा दी गई। उसके अधिकारों एवं दायित्वों को घर की चारदीवारी तक ही सीमित कर दिया गया। उसकी आर्थिक, मानसिक और शारीरिक स्वतंत्रता तक को छीन लिया गया। स्त्री की कोमलता, ममत्व, सहिष्णुता, उदारता, समर्पण उसकी कमजोरी बन गए। इन स्थितियों के कारण सामाजिक समीकरण बिगडता चला गया। समाज के इस संरचनागत दोष के कारण कन्या भूरण, शिशु हत्या, लिंग भेद, बालिका अशिक्षा, बेमेल विवाह, बलात्कार, यौन उत्पीडन, बहुविवाह, वन्ध्यत्व की अवधारणा, सतीप्रथा, दहेजप्रथा, स्त्री के भोग्या स्वरूप की अवधारणा जैसे विकार उत्पन्न हो गए। मिश्रजी ने अपनी कथाओं में अधिकाधिक स्त्री चेतना एवं महिला सशक्तिकरण की बात को बढ़ावा दिया। उनकी भग्नपंजर, पुनर्नवा, मरून्यग्रोध जैसी कहानियों ने न सिर्फ विधवाओं के हृदयगत भावों और पीडाओं को उजागर किया बल्कि उनको नया जीवन देकर जीने के अधिकार की बात भी की। यथा

किं पुनर्विवाहो में पापायैव प्रभविष्श्यति न पुण्याय ?
वाल्याध्वस्तं कुटीरं सर्वे पुनव्र्यवस्थापयन्ति। मलीमसं जलं
निर्मलीकृत्य पिबन्ति रोगग्रस्तं शरीरमौषधोपचारैः स्वस्थं
विदधाति। तत किं वैधत्यमेव निरौषधम् ?[12]

मिश्र जी नारी के भोग्या स्वरूप के प्रति भी समाज का दृष्टिकोण परिवर्तित करते हुए इसके समाधान का मार्ग प्रशस्त करते हैं। समाज में स्त्री के गुणों के बदले भी कार्य न देकर उसके नवयौवन पर दृष्टिपात करने वालों पर मिश्राजी ने अपनी कथा के

**माध्यम से प्रहार किया हैः-**

न कुत्रापि गुणशिक्षाशीलमूल्यम्। सर्वत्रैव यौवनमूल्यम्।
क्व गोपयेद् वराकी स्वकीयां तप्तकांचनदेहयष्टिम्।[13]

लैंगिक असमानता जैसी समस्या पर 'एकद्ययनी' में प्राड्विवाक देवेशधवन की पत्नी को पुत्र के लिए दुःखी दिखाकर समाज की आँखे खोलने का प्रयास किया है। बालिका-शिक्षा के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास करते हुए उन्होंने लिखा है। 'न्यायमहं करिष्ये' कथा में भवानी की भाभी उसकी उच्च शिक्षा को रोकने के लिए जो तर्क देती है। उससे पाठक सोचने पर मजबूर होता है और यह मजबूरी उसे अपने विचार बदलने को झकझोरती है।

किमभिनवं संयोजयिष्यते एम.ए. परीक्षोत्तरणेन।
यावती शिक्षाऽपेक्षिता तावती समवाप्ता भवान्या।
सम्प्रति न तथाऽपेक्षिता तदुच्चशिक्षा यथाऽपेक्षित
परिणयः।'[14]

इस तरह मरून्यग्रोध, पुनर्नवा, भग्नपंजर कथाएँ विधवा विवाह एवं पुनर्विवाह के रूप में जहाँ स्त्री के जीवन को गति एवं दिशा प्रदान करती है। वही सुखशयितप्रच्छिचंचा, पोतविहगौ, वाग्दत्ता, नर्तकी, आद्यन्तम्, प्रीतियोग आदि कहानियाँ प्रेमविवाह, अन्तर्जातीय विवाह और अन्तर्देशीय विवाह को स्वीकृति प्रदान कर विवाह के लिए विचार एवं भावनाओं के मेल को आवश्यक एवं महत्वपूर्ण बताती है। इस प्रकार मिश्रजी अर्द्धनारीश्वर की संकल्पना से युक्त सुंदर, संतुलित, सामंजस्यपूर्ण एवं गतिशील समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करके लोककल्याण का कार्य करते हैं।

**दलित चेतनाः**-मिश्रजी की रचनाओं में समाज के दलित वर्ग के प्रति भी संवेदना व्यक्त हुई है। उनकी कथाए उज्ज्वल

भविष्य एवं वर्गभेद रहित समाज की परिकल्पना को प्रस्तुत करती हैं। मिश्रजी तार्किक आधार पर समाज को दिशा देने का काम कथाओं के माध्यम से करते है। उनका मत है कि समाज के प्रत्येक मनुष्य के साथ व्यवहार का आधार उसके गुण, कर्म और संस्कार होने चाहिए जाति नहीं। हमें समाज के रत्नों का अन्वेषण करके उनको संवर्धित करना चाहिए। अनेनैव प्रकारेण रत्नान्वेषणं करणीयम्। सर्वेऽपि बालका भगवत्स्वरूपाः। न कोऽपि सुदर्शनो रूपहीनो वा। न कोऽपि समृद्धौ दरिद्रो वा। न कोऽप्यनाथस्सनाथे वा। प्राप्ते खलु सम्बले संरक्षणे निर्गुणोऽपि सनाथो जायते।[15]

**सांस्कृतिक चेतनाः-**

संस्कृति मानव के जीवन दर्शन की संवाहिका और राष्ट्र की जीवनधारा की प्राणदायिनी है। इस हेतु कथाकार श्रीमिश्रजी ने कथाओं की विषयवस्तु में सांस्कृतिक जीवनमूल्यों को संरक्षित करते समसामयिक संदर्भो के साथ जीवन मूल्यों को सम्मुख रखने का अथक प्रयास किया है। 'जिजीविषा' में तपती की माँ आजीविका के बदले शीलभंग होने पर परमात्मा को उलाहना देते हुए कहती है

'अन्तर्यामिनी! दृष्टम्मया भवन्नयायः। उत्थितान् पातयसि। पापान् प्रवर्धयसि! साधून् सर्वथा खलीकरोषि! [16]

भारतीय संस्कृति में शक्ति पूजा की परम्परा रही है। इसे अभिव्यक्त करते हुए मिश्रजी कहते हैं

राजराजेश्वरि! भूभंग मात्रेणैव त्रिलोंक विदधती विनाशयन्ती च या त्वं हरिहरविरंचिसेव्यमाना सर्वोपरि राराज्यसे।[17]

पुनर्जन्म एवं मोक्ष का समर्थन करते हुए वे कहते हैं-

पुर्वजन्मार्जितं संस्कारानुप्राणितो भवति मानवनिसर्गः।[18]

वसुधैव कुटुम्बकम् की संकल्पना को महत्वपूर्ण स्थान देकर सम्पूर्ण चराचर जगत को इसकी शिक्षा देने के लिए उनकी कथा 'वाग्दत्ता' में कहा गया है

वसुधैव कुटुम्बकम् 'इति भारतराष्ट्रमेव समग्रविश्वमध्यापयत्। कृण्वन्तो विश्वमार्यमिति संकल्पनाऽपि भारतवर्षस्यैव।[19]

इस तरह कहा जा सकता है कि उनकी परिकल्पनाएं नूतन समाज के निर्माण में सशक्त भूमिका की पालना करती है।

**राजनीतिक चेतना-**

अभिराज राजेन्द्र मिश्र के कथा संग्रह में आज का समाज और आज की राजनीतिक स्थिति प्रतिबिम्बित होती है। जिसमें भाषावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता, अशिक्षा, बेरोजगारी, यौन उत्पीडन, बलात्कार, भ्रष्टाचार आदि राजनैतिक विषयों को उकेरा गया है। सत्तालोलुप ताकतें इन सभी बुराइयों को समाज से मिटने ही नहीं देती। अर्थसाम्यप्रयासापेक्षया हृदयसाम्यस्थापनाप्रयासः सुकरः उपादेयश्च प्रतिभाति। हन्त तदेव कार्यं शासनेन न चक्रियते।[20] मिश्रजी राजनीति, राजधर्म एवं राजनीतिक विंसगतियो की गहरी समझ रखते हैं और अपनी कथाओं के माध्यम से उन पर जिस तरीके से प्रहार करते हैं वे सराहनीय होने के साथ-साथ वर्तमान समय में अनुकरणीय भी है।

**धार्मिक चेतनाः-**

'धर्म समाज की आत्मा है।' इस उक्ति को आधार बनाकर मिश्रजी ने अनेक कथाओं को लिखा। उन कथाओं मे उन्होंने स्पष्ट बताया कि वेदनिन्दक नास्तिक हैं। कर्म और दायित्व निर्वहन से मनुष्य को कभी नहीं डिगना चाहिए। अभिराज राजेन्द्रमिश्र ऐसे किसी धर्म, सम्प्रदाय अथवा पथ को अनुकरणीय नहीं मानते जो समाज को पुरूषार्थहीन कर दे। वे कहते हैं-

धिक्तं धर्मं, धिग्धिक्तं सम्प्रदायं यस्समाजं क्लीवं दिधाति, यो लोकं कर्मपराङ्मुखं कुरूते, यो लोकं पराश्रयिणं परोपजीविनं परमुखापेक्षिणंच विधन्ते।[21]

इस तरह मिश्रजी समाज की आँखे खोलकर उसे ढोंग-पाखण्ड से दूर रखकर निष्काम कर्मयोग से आत्मकल्याण एवं सृष्टि के कल्यण का मार्ग प्रशस्त करते है।

**आर्थिक चेतनाः-**

पुरुषार्थ चतुष्टय की परिगणना करते हुए मिश्रजी ने धर्म के बाद अर्थ को स्थान दिया है। हालांकि आर्थिक विषय आपकी कथाओं की मुख्य विषयवस्तु नहीं रही परन्तु आर्थिक व्यवस्था के प्रति उनका दृष्टिकोण कथाओं में अनायास और प्रकारान्तर से प्रकट होता है। आर्थिक विवशता से मनुष्य के असहायस होने का ज्वलंत उदाहरण 'जिजीविषा' कथा में उपस्थित है। 'इक्षुगन्धा' में आर्थिक स्तर मानवीय सम्बन्धों में दूरियाँ और उलझन किस तरह उत्पन्न कर देता है, का बखान किया गया है। जब बिट्टी के पितामह उसका विवाह कथानायक से नहीं करते-

तस्याः पितामहो मां दरिद्र प्रख्याप्य भूमिहीनंच संघोस्म कनचित् धनिकपुत्रेण सार्धं तदविवाहं निश्चितवान्।[22] इति

'चंचा' कथा में भी जिस तरह का संघर्ष नायिका मुन्नीबाई को देखना पड़ा वो सब सामाजिक असमानता और आर्थिक अभावों के कारण ही था।

**ऐतिहासिक चेतनाः-**

अभिराज राजेन्द्र मिश्र की ऐतिहासिक कथाएँ यथा 'ताम्बूलकरङ्वाहिनी, सिंहसारि, राङगडा आदि है। इनमें आपने ऐतिहासिक कथाओं को घटना प्रधान अथवा विवरण प्रधान न बनाकर भाव प्रधान अथवा संवेदनाप्रधान ही बनाया है क्योंकि वे स्वयं काल की सीमाओं को लांघकर पुरातन समाज में जाकर उन चरित्रों को स्वयं जीते हैं। उनके भाव महसूस करते हैं तब जाकर तत्कालीन समाज के दृष्टिकोण, विचारधारा, जीवन दर्शन और पद्धति, चिन्तन, मनन तथा संवेदनाओं से हमें रुबरु कराते हैं। जैसे उनकी कथा 'ताम्बूलकरंकवाहिनी' में कर्नाटक राज्य के पाण्ड्यवंश के इतिहास की झलक है तो 'सिंहसारि' कथा विदिशा की अन्तर्मनोदशा एवं तत्कालीन ताने-बाने को प्रकट करती कल्पना मिश्रित यथार्थपरक कथा है। यह कथा जावाद्वीप के बारहंवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध की ऐतिहासिक स्थिति को प्राकारान्तर से प्रकट करती है। इसमें ऐतिहासिक कथ्य को साथ लेकर चलते हुए दिदिशा के अन्तद्वन्द, उसकी पराजय, विवशता में आत्म समर्पण, अन्तर्दमन, पुनःप्रणय, पुनः पराजय, पुनः दमित भावनाओं एवं हृदय में आन्दोलित पराजय के प्रतिशोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति को भी प्रतिबिम्बित किया है। 'राङगडा' का कथानक पूरा का पूरा राजनीतिक संघर्ष एवं सत्ता की महत्वाकांक्षाओं को अभिव्यक्त करते हुए ऐतिहासिक ही है। इस तरह मिश्र जी इतिहास और प्रामाणिकता से परे न रहकर भी कल्पनाश्रित और सृजनहार हैं। उनकी कथाओं में तद्देशीय, तत्कालीन सभ्यता, संस्कृति, राजव्यवस्था, सामाजिक संरचना एवं जीवन दर्शन का बोध सम्यक एवं सहज रूप में होता है। इनकी कथाओं में लोकचेतना श्रेष्ठता के चरम शिखर पर विराजमान है।

**निष्कर्षः-**

अभिराजराजेन्द्रमिश्र की कथाओं का विश्लेषण करने पर निश्चित रूप् से ज्ञात हो जाता है कि उनकी कथाएँ समाज के दृष्टिकोण को सशक्त आधार प्रदान करते हुए परिवर्तित करता है जिसमें मूलभूत तत्व यथा दार्शनिक चिन्तन, मनोवैज्ञानिक चिंतन समाहित रहते हैं, जिससे व्यक्ति का जीवन शिष्टाचार के गहन ज्ञान एवं जीवन कौशल की सम्पूर्णता को प्राप्त करने में समर्थ बनता है।

**सन्दर्भ ग्रन्थः-**

1.वामन शिवराम आप्टै/संस्कृत हिन्दी शब्दकोष/882-83

2.डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी/ अभिनवकाव्यालंकारसूत्र/3

3.मधुमती दिसम्बर 2005/46

4.वामन शिवराम आप्टै/ संस्कृत हिन्दी शब्दकोष/386

5.अभिराज राजेन्द्रमिश्र/पुनर्नवा/35

6.अभिराज.रा.मि./इक्षुगन्धा/51

7.अ.रा.मिश्र/पुनर्नवा/126

8.अ.रा.मिश्र/राङ्गडा/51

9.अ.रा.मिश्र/चित्रपर्णी/108

10.अ.रा.मिश्र/इक्षुगन्धा/28

11.अ.रा.मिश्र/पुनर्नवा/130

12.अ.रा.मिश्र/इक्षुगन्धा/55

13.अ.रा.मिश्र/इक्षुगन्धा/ 12

14.अ.रा.मिश्र/पुनर्नवा/87

15.अ.रा.मिश्र/चित्रपर्णी/12

16.अ.रा.मिश्र/इक्षुगन्धा/14

17.अ.रा.मिश्र/राङ्गडा/92

18.अ.रा.मिश्र/राङ्गडा/15

19.अ.रा.मिश्र/पुनर्नवा/70

20.अ.रा.मिश्र/पुनर्नवा/47

21.अ.रा.मिश्र/पुनर्नवा/135

22.अ.रा.मिश्र/इक्षुगन्धा/49

# प.प. श्रीवासुदेवानन्द सरस्वति स्वामी महाराजका वैदिककर्म चिन्तन

**सौरभ नं. जोशी**

कवि कुलगुरु कलिदास संस्कृत, विश्वविद्यालय, रामटेक

**जयवन्त चौधरी**

वेद तथा व्याकरण विभाग, कवि कुलगुरु कलिदास संस्कृत, विश्वविद्यालय, रामटेक

**सारांश**

*भारतवर्षमें जिसप्रकार वैदिकसंस्कृति मौखिक परंपराकेव्दारा अभीतक जीवितहै उसीप्रकार वैदिकधर्मय हकर्माचरण और उपासनाके द्वारा अनेक तपस्विऋषिमुनियोंके आचरणसे जीवितहै। प.प.श्रीवासुदेवानन्द सरस्वति स्वामीमहाराज कर्मठ धर्माचरणी, परम्विरक्तथे। उनका संपूर्ण चरित्र और वाङमय दत्तभक्तिसे ओतप्रोत भरा तथा प्रासादिक है।*

***आचारोपरमोधर्मोधर्मेणार्थंचसाधयेत।***

***कामंतदविरोधेनमोक्षोऽत: सूकरोभवेत।***

*"आचारप्रभवोधर्म:" यह उद्दिष्ट सामने रखकर अपना जीवन व्यतित किया और समाजके लिए आदर्श प्रस्थापित किया। वेद तथा धर्मशास्त्रप्रतिपादित कर्माचरणकापुरस्कार करतेहुए श्रुति-स्मृति अनुशासित विहित कर्ममें नित्य-नैमित्तिक कर्मका आचरण स्वर्गप्राप्तिहेतु अतीव महत्त्वपूर्ण है। यथाविधि अखंडनित्य-नैमित्तिककर्माचरण प्रायश्चित्तकर्मको गौणत्त्व देता है। इस सन्दर्भमे विस्तृत विवरण प्रस्तुत शोध पत्रमे किया गया है।*

## प्रस्तावना -

**प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।**

**एनं विदन्ति वेदेन तस्मात् वेदस्य वेदता॥**[1]

प्रत्यक्ष और अनुमानप्रमाणोंसे भीयदिआत्मकल्याणका ज्ञान प्राप्त नहोतोकेवल एकमात्रवेदोंसेही आत्मकल्याणका ज्ञान प्राप्त होता है। यही वेदोंकि अलौकिकता है।मनुस्मृतिमेकहागयाहैकि**"वेदोऽखिलो धर्म मूलम्"** [2] अर्थात्आर्यसनातन वैदिक धर्म का मूल वेदही है।अतःमनुष्यको वेदोंका रक्षणकरतेहुये वैदिक धर्मका पालनकरना चाहिये। रघुवंशमे कवि कालिदासने कहा है ***"सोऽहम् आजन्म शुध्द:"*** [3] अर्थात्यदिसम्पूर्णजीवनभर शुध्द रहना है तो वैदिक धर्म का आचरण करना आवश्यक है।

महभारतमे कहा गया है कि

**"धारणाध्दर्ममित्यहुर्धर्मो धारयते प्रजा:।**

**य स्याध्दारणसंयुक्त: स धर्म इति निश्चय:॥** [4]

इस प्रकार महाभारतकार धर्म कि व्याख्या करते है।मनुष्यके तप तथा सामर्थ्य से अन्त:करन मे ज्ञान प्रगट होनाहि वैदिक धर्म कि विशेषता है। व्यक्ति के जीवन मे धर्म का महत्त्व अनन्य साधारण है। मनुष्यके जीवनमे धर्म का अस्तित्व अत्यन्त आवश्यक है। व्यक्ति के प्रापंचिक और पारमार्थिक जीवन का अधिष्ठान धर्म हि होना चाहिए ऐसा ऋषिमुनिओं का मानना है।

भारतमे जिस प्रकार वैदिक संस्कृति मौखिक पध्दतिके माध्यमसे अभी तक जीवित है उसी प्रकार वैदिक धर्म भीवैदिक कर्माचरण, वैदिक उपासना तथा तपस्वी ऋषिमुनिओं के आचरण से जिवित है। अद्वैतका अनुसरण करने वाले तथा ज्ञानोत्तर भक्ति केउपदेशक स्वामीजी अपने कर्मठ आचरण

1आचार्य सायण ऋक् भाष्यभूमिका
2मनुस्मृति २/६
[3]रघुवंशसर्ग१, श्लोक८
4महाभारत कर्णपर्व ६९/५८

से वैदिक धर्माचरण का समाज के सामने एक आदर्श प्रस्थापित करतेहै ।प.प. श्रीवासुदेवानन्द सरस्वति टेंब्ये स्वामी महाराज अत्यंत निस्पृह, निग्रही, दत्त समर्पित मनोवृत्ती वाले , प्रतिष्ठातथा कीर्ति केलिए निरपेक्ष भाव रखनेवाले एक परम्विरक्त तथा कर्मठ धर्माचरणी परिव्राजकथे। इ.स.१८५४ मेमाणगाव (जि.सिंधुदुर्ग,महा.) से प्रारंभ हुई महाराज जीवनयात्रा इ.स.१९१४ मे नर्मदा तटपर गरुडेश्वर (जि.बडोदा,गुज.) मे समाप्त हुई। महाराज मंत्र सिद्धिके ज्ञाता, उत्तमवैद्य, उत्कृष्ठ ज्योतिषी तथा यंत्र-तंत्रज्ञथे। स्वामीजी मराठी व संस्कृत भाषाके आध्यात्मिक वाङमयके प्रति भावान सिद्धकविथे। उनका सम्पूर्ण चरित्र और साहित्य दत्त भक्तिसे ओत प्रोत है।

पुराण, महात्म्यग्रन्थ, टिका, चुर्णिका,कीर्तनों के आख्यान ,पद, स्तोत्रादि संग्रहके साथ १० संस्कृत व ६ मराठी ग्रन्थ ऐसा विपुल साहित्य महाराजरचितहै। मुघलकेआक्रमण, ईसाईयों के धर्मपरिवर्तन व ब्रिटिशो कीसत्ताइस कारणसे भारतीय सनातन समाज व्यवस्था पूरी तरह अस्त –व्यस्त हो गयी थी, ऐसे समय मे भी स्वामीजीने "आचारप्रभवोधर्म: " का ध्येय सामने रखकर अपना जीवन व्यतीत किया। उनके धर्माचर से परिपूर्ण आदर्श जीवनके कारण समाजिक व धार्मिक जीवनको एक अभूतपूर्व बल प्राप्त हुआहै।

वेद तथा धर्मशास्त्र प्रतिपादित कर्माचरण का स्वामी महाराजने अपने वाङमयमे पुरस्का रकिया है।कर्मके नित्य, नैमित्तिक ,काम्य और प्रायश्चित प्रकार सर्व विदित है ।कर्म श्रुति-स्मृति अनुशासित है । शास्त्रोमें इनका अपना स्थान स्पष्ट है परन्तु स्वामी महाराज नित्य- नैमित्तिक कर्म से प्रायश्चित्त कर्म को गौणत्त्व देते है । वेद व शास्त्रविहित कर्म यथाविधि व सातत्यपूर्ण करने पर प्रातश्चित्त कर्म कि आवश्यकता नही होती यह शोधपत्र इस विषय को स्पष्ट करता है ।

**सर्वागमानाचार: प्रथमंपरिकल्पते।**

**आचारप्रभवोधर्म: धर्मस्यप्रभुरच्युत: ॥**[5]

महाभारत मे भी आचार को श्रेष्ठ धर्म कहा है। आचारही धर्मका उगमस्थान है।सद्गुण तथा सदाचार ये दो गुण जितने प्रबल होंगे उतनाही धर्म प्रबल होता है। श्रीवासुदेवानन्द स्वामी महाराज अपने वाङमय मे वैदिक धर्माचरण (कर्माचरण) कि विस्तृत स्वरुपसे चर्चा करते है। कुमार शिक्षा इस ग्रंथमें आचार से ही धर्म की उत्पत्ति बतायीहै।

**आचारप्रभवोधर्मोधर्मेणार्थंचसाधयेत।**

**कामंतदविरोधेनमोक्षोऽत: सुकरोभवेत॥**[6]

धर्म द्वारा अर्थ और काम प्राप्त करनेसे मोक्ष सुखकर होता है। धर्माचरणके साथ अर्थ शुचिता का भी प्रति पादन कियाहै।

**चित्तस्यशुद्धयेकर्म, नतुवस्तूपलब्धये।**[7]

स्वामीजी कि दृष्टि से कर्म मार्ग ही मूल आचारधर्म है । कर्म से सं सिद्धी प्राप्त होती है।

वेदों मे दो प्रकार के कर्मो का विचार किया गया है –विहित तथा निषिद्ध कर्म। विहित कर्म से परमार्थ के और प्रवृत्त होते है ओर निषिद्ध कर्म निवृत्त्यर्थ है। शास्त्रों मे नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रायश्चित्त ये विहित कर्म के चार कार के बताये गये है। निषिध्द कर्मके फल नरकादी लोक प्राप्ती होने के कारण मनुष्य ने निषिद्ध कर्मका त्याग करना चाहिए ।स्वामीजी के मतानुसार काम्यकर्म किसी कामना को ध्यान मे रखकर किया जाता है, अतः मुमुक्षूनेकाम्यकर्म पर ज्यादा ध्यान न देते हुये केवल नित्यनैमित्तिक कर्महीं करना चाहिए। उसका त्याग करना कदापि योग्य नही कहलाता है ।

[5]महाभारत अनुशासनपर्व १४९/१३७

[6]कुमारशिक्षाश्लोक क्र.१६

[7]विवेकचूडामणि. श्लो.११

**नित्यनैमित्तिकंतस्मात्प्रत्यवायजिघांसया।**

**शमाद्युत्पत्तिपर्यंतकर्तव्यंस्वाश्रमोचित्तम्॥**[8]

**नित्यकर्म –**

नित्यकर्म मे प्रात:स्मरण, स्नान-संध्या, देवतार्चन, ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय-वेद-वेदांग पठण, देव, ऋषि, पितृ आदिओं का तर्पन ) वैश्वदेव (पंचमहायज्ञ मे देव, भूत, पितृ, पशु, मनुष्य आदि पांच यज्ञ) का अन्तर्भाव होता है ।वैश्वदेव के संकल्प मे **'अन्नसंस्कारार्थं आत्मसंस्कारार्थं'** ये संकल्पना अन्तर्भूत है।

स्वामीजी अपने युवाशिक्षा नामक ग्रंथ मे बताते है –

**अग्निहोत्रादि स्व:साधनीभूतमेव तत् ।**

**ज्ञानोद्देशकृतं ज्ञानसाधनीभूतमक्षयम् ॥**[9]

मनुष्य को ब्रह्मचार्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यासाश्रमानुसार अपने अपने कर्तव्य करने चाहिये । "विना संध्यावन्दनेन नाधिकारोऽन्यकर्मसु" अर्थात् मनुष्य का संध्यावंदनादि कर्म किये बिना अन्य कर्मों मे अधिकार नही रहता है । अतः संध्यावंदनादि नित्यकर्म सातत्यपुर्वक करने चाहिये ।

**नैमित्तिक कर्म –**

षोडस संस्कार, जननशान्ति, कुलाचार, श्राध्दादि कर्म आदि का समावेश नैमित्तिक कर्म मे होता है। स्ववर्णाश्रमोचित धर्मपालन में नित्य और नैमित्तिक आचारधर्म महत्त्वपूर्ण होता है।

**स्वयं अविशुध्दं मलिनं चित्तं यस्य स: अज्ञा: अज्ञानी ।**[10]

**निजकर्मस्वाश्रमोचित कर्म हित्वा परित्यज्य ॥**

स्वामीजी अपने कुमार शिक्षा नामक ग्रन्थ के भाष्य मे कहते है कि आचारशुध्दि के विना योग, ज्ञान, साक्षात्कार आदि कि अपेक्षा करना पागलपन है।

**विधिना त्रिविधेनातो यथाकालं यथोदितम् ।**

**दैवीसम्पत्तियुक्तेन कर्तव्यं कर्म जानता ॥**[11]

अर्थात् अपने नित्य व नैमित्तिक कर्म यथाकाल, यथाविधि, इतिकर्तव्यता बुध्दि से व दैवीसम्पदा के अपेक्षानुसार प्रत्येक व्यक्ति ने करने जरुरी है ।

स्वामीजी आगे कहते है-

**नि:स्पृहशांतचित्तो य: स्वधर्मपरिनिष्ठित:।**

**संस्करै: संस्कृतो विप्र: पवित्रो योग्यतां प्रजेत ॥**

**अष्टचत्वारिंशता य: संस्करै: संस्कृत: शुचि:।**

**नित्यनैमित्तिकज्ञाता ब्राह्मण: सोस्नुते अमृतम् ॥**

**पंचविंशति संस्कारास्तदभावे सुनिश्चिता:।**

**पवित्रत्वं योग्यता च विप्रस्येह न चान्यथा ॥**[12]

नैमित्तक कर्म मे मुख्यत: संस्कारों कि गणना होती है । शास्त्रों मे सामान्यत: १६ संस्कार बताये गये है । स्वामीजी २५ ( गर्भाधान, पुंसवन, अनवलोभन, सीमन्तोन्नयन, विष्णुबलि, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, महानाम्नी, महाव्रत, उपनिषद्, गोदान, समार्वतन, विवाह, श्रवणाकर्म, सर्पबली, आग्रायण, आश्वयुजीकर्म, प्रत्यवरोहण, अष्टका, अन्वष्टका, पूर्वेद्यु, पिण्डपितृयज्ञ) और ४८ संस्कारों (अग्न्याधान, सप्तहविसंस्था, सप्तसोमसंस्था, अष्टावात्मगुण ) का वर्णन दत्तपुराण मे करते है । गर्भाधानादि २५ संस्कार व्दिज को पवित्रता और योग्यता प्राप्त कराते है। अग्न्याधान, सप्तहविसंख्या, सातसोमसंख्या, अष्ट आत्मगुण आदिको मिलाकर ४८ संस्कारों से ब्राह्मण को सलोकता, स्वरुपता प्राप्त होती है ।

वस्तुत: विविध ग्रंथों मे ऋषिमुनींओं द्वारा किया गया धर्माचारविषयक विवेचन समुद्रवत् अपार है अतः

[8]कुमारशिक्षा श्लोक क्र.१२
[9]युवाशिक्षा श्लोक क्र. ७
[10]कुमारशिक्षा भाष्य
[11]कुमारशिक्षा श्लोक क्र.२४
[12]दत्तपुराण ८/७/२-४

**"किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहित:"**[13]

यह वस्तुस्थिती है । सबका उपकारक ऐसा साधारण धर्म द्विसाहसी ग्रंथ मे स्वामीजी बताते है ।

**आचारो आद्यो धर्मो नु: सुखदस्तूभयत्र स:।**

**श्रुतिस्मृतिपुराणोक्ताचरणं विष्णुचिंतनम् ॥**[14]

अर्थात आचार ही पुरातन धर्म है । वही हमे इह और परलोक में सुखदायक है । श्रुति-स्मृति-पुराणो द्वारा बताया गया कर्माचरण हि सच में विष्णुचिन्तन है ।

**प्रायश्चित्तकर्म-**

धर्म का आचरण करते समय यद्यपि जाने अनजाने मे जो कर्मलोप, या दोष उत्पन्न होता है इसी संदर्भ से प्रायश्चित्तकर्म धर्म के कर्माचार मे अंतर्भूत है । कर्म का लोप, प्रमादयुक्त कर्म आदि से पातक उत्पन्न होता है अतः उसका परिहार तथा चित्तशुद्धी प्रायश्चित्तकर्म का हेतु है । धर्म तथा समाजव्यवस्था आदी संदर्भ मे नैतिक नियमों का शतप्रतिशत अनुसरण सभी मनुष्यों के द्वारा हो इसी भूमिक से प्रायश्चित्त कर्म का विचार शास्त्रों मे है । श्रीवासुदेवानन्दस्वामी महाराज द्विसाहस्त्री ग्रंथ मे कहते है-

**पश्चातापेन संशुद्धि: प्रायश्चित्तादिभि: पुन:।**

**सदस्युच्चार्थपापंस्वंब्रह्मदण्डंनिधायच॥**[15]

अर्थात् प्रायश्चित्तसे पापों की शुद्धी होती है ।विद्वान विप्रों के सभामे ब्रह्म दण्ड स्विकारने के बाद पश्चातापसे अपने पापों का उच्चारण करना सबसे बडा प्रायश्चित है।

मंत्रजप आदिअनुष्ठान, उपोशन, समुद्रस्नान, चांद्रायणादिकृच्छ्रप्रायश्चित्त यह सभी प्रायश्चित्तकर्मों का वर्णन करने के बाद स्वामीजी एक मर्म कहते है …

**प्रायश्चित्तानिचीर्णानिदुष्टंहरिपराङ् मुखम्।**

**नदीवसौरभाण्डंननिष्पुनन्तिकथञ्चन॥**[16]

यद्यपि मुख बंद किया हुआ मद्य का पात्र पानी मे बारबार डुबाने से शुध्द नही हो सकता उसी प्रकार श्रद्धाहीन, भक्तिहीन, ईश्वर पराङमुखव्यक्ति कितने भी प्रायश्चित्तका आचरण करे फ़िर भी शुद्ध नही हो पाता।पुत्र कि प्राप्ती हो इसलिये काम्यादि का अनुष्ठान करो यह विवेचन आसक्त व्यक्ति के लिये है । "लोकोऽपुत्रस्य नास्ति" यह मर्म जाननेवाले मनुष्य को बृहदारण्यक उपनिषद् वित्तेषणा, लोकेषणा तथा दारेषणा आदि का त्याग बताता है । नित्यनैमित्तिककर्म अनुष्ठान विहित है उसका त्याग इहलोक तथा परलोक में भी सुख प्राप्ती नहीकराता। अन्वाधान से कर्म मे दोष,लोप हो जाने से प्रायश्चित्त कर्म से शुद्धी अपेक्षित है। प्रायश्चित के लिए कर्मलोप का पश्चाताप होना अत्यावश्यक है किन्तु पश्चाताप कि भावना उत्पन्न होना ईश्वर ,गुरु, संतकेकृपाबिन संभव नही है ।

**निष्कर्ष –**

स्वामी महाराज जीका संपूर्ण जीवन वैदिक धर्माचरण से ओतप्रोत था । उनका वाङ्मय भी संपूर्ण वैदिक कर्माचरण का उपदेशक है । अखंड और दोषरहित वर्णाश्रमकेउचित कर्मोका आचरण करने वाले महाराज प्रायश्चित्त कर्म को गौणत्व देते है । वर्णाश्रमकेउचित कर्माचरण का फल मनुष्यों को इस जन्ममे नही तो अगले जन्म मे निश्चितही संचित – प्रारब्धके रूप मे प्राप्त होता है ।

[13]श्रीमद्भगवतगीता ४/१६

[14]द्विसाहस्त्रीगुरुचरित्र१८/२३

[15]द्विसाहस्त्रीगुरुचरित्र१५/२७

[16]द्विसाहस्त्री १५/४१

**सन्दर्भग्रंथसूची**

1) धर्माचे तत्त्वज्ञान (१९७५) ज.वा.जोशी ,कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन,पुणे
2) दत्तपुराण (मराठी अनुवादासहित) ,(२०१४) दा.प.पाठक ,मंगेश प्रकाशन,नागपूर
3) द्विसाहस्री (मराठी अनुवादासहित),(२०१३),डॉ.वासुदेव व्यं. देशमुख ,श्री.वा.स.स्वा.महाराज प्रबोधिनी,वडोदरा
4) ऋग्वेद- संहिता (सायणाचार्यभाष्य-हिन्दी अनुवादसहित) (२०१६), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
5) शिक्षात्रय (२०१३), श.रा.जोशी ,श्रीवासुदेव निवास ,पुणे

# कथासाहित्यविषयकं योगदानम्

## सौभाग्यवती पण्डिताक्षमाराव रचित लघुकथा

**सौ.सीमा विनय भारंबे**

नंदिनीबाई वामनराव मुलींचे विद्यालय,जळगाव.

**सारांश**

*अखिल भारतीय एकता कि संस्कृत भाषा ही एकमात्र प्रतिक है ।हमारी प्राचीन समृद्ध संस्कृति इसी भाषा में निहित है । हमारे बहुमूल्य विचार,उच्च दार्शनिक उडाने,आध्यात्मिक और हमारी उन्नत नैतिकता संस्कृत में ही समाविष्ट है ।संस्कृत साहित्य का आधुनिक काल लगभग गत १०० वर्षो में फैला हुआ माना जाना चाहिये । अर्थात बीसवी सदी के प्रारम्भ से आज तक संस्कृत साहित्य के इस आधुनिक काल में जो प्रवृत्तियां विकसित हुई वे ही वर्तमान अर्थात समसामायिक लेखन में भी परिलक्षित हो रही है ।इस पर आश्चर्य नही होना चाहिए कि वर्तमान काल में भी संस्कृत में पद्य,गद्य -नाटक और कथा साहित्य सभी विधिओं में हो रहा है ।यह नवलेखन दृष्टिकोण में आधुनिक है,विधियों में भी, शैली में भी और भाषिक प्रवृत्तियों में भी ।*

संस्कृत में कादंबरी जैसा उपन्यास और शाकुंतल जैसे नाटक तो थे पर लघुकथाएँ, एकांकिका रेडियो नाटक और आधुनिक उपन्यासिकाएँ नही थी ।अप्पाशास्त्री ने अनुवाद किया और बंगला कहानियो की शैली में सामाजिक ८ कहानियाँ भी लिखी । संस्कृत में लघुकथाओं ने तो क्रांतिही ला दी थी । इस शताब्दी के साहित्य में सब तरह की लघुकथाओं की संख्या सैकड़ों में ही नही हजारो में होगी जिनमें ऐतिहासिक, सामाजिक, काल्पनिक सब तरह की कहानियाँ शामिल है । यहाँ तक की फेन्टेसी और व्यंगकथाएँ भी लिखी गई है ।विधवा विवाह, दहेज उन्मूलन, बाल विवाह विरोध आदि विषयों पर अत्याचार की शिकार महिलाओं पर और निर्धनता से ग्रस्त लोगों पर बड़ी मार्मिक कहानियाँ संस्कृत लेखकने लिखी है।

जिस प्रकार नई विधाओ, नये छंदो और नई शौलियों की आवश्यकता आधुनिक सस्कृत साहित्यकार ने अनुभव की उसी प्रकार आधुनिक युग की अभिव्यक्तियों के लिए उसे भाषा मे भी नये शब्द की आवश्यकता हूई । रेल, रेडियो, फुटबॉल, स्टेशन जैसे आधुनिक पदार्थो के लिए तो उसे नये शब्दो की आवश्यकता हुई, संस्कृत भाषा में तभी प्रवेश पाया सकता है जब उसका अनुवाद संस्कृत के धातुओं और प्रत्ययों से बने शब्द व्दारा किया जाये अथवा उनका अनुवाद संस्कृत व्याकरण से निष्पादित किया जाए । दोनो प्रकारो के प्रयत्न आधुनिक पण्डितो ने किये । रेल को अग्निरथ, रेडियो को वितंतु । इसी प्रकार नई वैज्ञानिक और राजनैतिक अभिव्यक्तियों के लिए भी आधुनिक लेखकने शब्द बनाये । इस दृष्टी से भाषिक क्षेत्र में हो रहे नये प्रयोग भी आधुनिक साहित्य की देन है ।१

सन्दर्भ: १)अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय के नक्षत्र – डॉ. दिप्ती कमल

### 'लघुकथा' शब्द की व्याख्या

'लघुकथा' शब्द का अर्थ एक एसी कहानी से है जिसमें सीमीत शब्द का प्रयोग करते हुए कथा का प्रारंभ, विकास, कौतुहल और चरमसीमा परस्पर क्रम में आते है और मनोरंजन, ज्ञानवर्धन, संदेश आदि गुणों से पाठकों को आनंदीत करते है।

### लघुकथा लेखन के उद्देश्य

- भावनाओं और विचारों को मूर्त रूप देना ।
- चिंतनशक्ति और कल्पनाशक्ति को बढाना ।
- अनुभवों को साझा करने का माध्यम ।

•साहित्य में रूची जागृत करना ।

लघुकथा 'देखन में छोटी लगे घाव करे गंभीर' लघुकथा दो शब्दों से मिलकर बना है । लघु – छोटा और कथा – कहानी। लघुकथा यह वाङ्य प्रकार का संस्कृत में सौभाग्यवती पण्डिता क्षमाराव इन्होने ही आरंभ किया ।में यहाँ सौभाग्यवती पंडिता क्षमाराव ने लिखीत लघुकथाओं के बारेमे प्रस्तुत करने का प्रयास कर रही हुँ ।१

सन्दर्भ: १) www.on।inhindi in –Avinash Ranjan Gupta

सौभाग्यवती पण्डिता क्षमाराव

नास्ति हीनतरं लोके मानिनः परयाचनात् ।

क्षुधितोऽपि न याचते बन्धुमित्राणि कर्हिचित् ।। शंकर जीवनाख्यानम्

जीवत्येव मयिख्याति लभेरन्नचिरादिमे ।

देश – सेवां च कुर्वेरन्नित्यासीन्मे मनोरथ:।।शंकर जीवनाख्यानम्

पण्डिता क्षमाराव बीसवी शती की विख्याता विदुषी थी ।पिता पाण्डुरंग के जैसा देश –विदेशी भाषाओं पर इनका गहन अध्ययन था ।अपने पिता की जीवनी लेखन से पण्डिता क्षमा ने संस्कृत साहित्य में नई विधा का सूत्रपात किया ।उसके प्रस्ताव में श्रीनृसिंह केलकर ने मार्मिक टिप्पणी करते हुए कहा –

'कथं हि न करिष्यन्ति कन्याभ्य: पितर:स्पृहाम् ।

ऋणम् तत् पैतृकम् पुण्यमपाकुर्युर्तदिह ता: ।।१

ये गुजराती से भी अपरिचित न थी ।विदेशी भाषा का ज्ञान इसी से प्रगट है की १९२० से १९३० तक अंग्रेजी में ही शार्ट स्टोरीज (लघुकथाएँ) लिखी परन्तु १९३१ से अपनी कलम संस्कृत की और घुमाई। तब से लेकर जीवन- पर्यंत आप माँ सुरभारती की सेवा करती रही और संस्कृत जगत के एक बहुत बडें अभाव और युग की मांग को पूरा करती रही ।

क्षमाराव के वैदुष्य से सन्तुष्ट हो कर अवध की संस्कृत कल्याण परिषद ने १९३८ में इन्हे पण्डिता की मानद उपाधी से विभुषित किया ४ वर्ष के उपरान्त साहित्य चन्द्रिका से सम्मानित किया।

सन्दर्भ: १)संस्कृत-साहित्य,काव्यशास्त्र एवं छन्द परिचय(२०१९ ने अनुसार)-जगनदानन्द झा क्षमाराव की प्राप्त मुद्रितरचनाओं की संख्या १२ है ।

१)सत्याग्रह गीता २) कथापञ्चकम् ३) विचीत्र परिषद् यात्रा ४)शंकर जीवनाख्यानम् ५)मीरा लहरी ६)कथामुक्तावली ७) उत्तर सत्याग्रह गीता ८) तुकाराम चरितम् ९) रामदास चरितम् १०) ग्रामज्योती ११)श्री ज्ञानेश्वर चरितम् १२) स्वराज्य विजय: ।इनमेसे लघुकथा - कथामुक्तावली, कथापञ्चकम्, ग्राम ज्योति ।

**कथामुक्तावली (१९४५ बम्बई)**

लघुकथाओं का संग्रह है जिसमें विभिन्न विषयों में सम्बन्धित २५ कथाओं को एक ग्रंथ रूपदे दिया है ।यह कथा ग्रंथ अन्य कथा – ग्रंथों से इसलिए भिन्न है की अन्य रचनाएं पद्यबध्द है। कथामुक्तावली हीएक एसी कृतीहै जो गद्य में लिखी हुई है । गद्यमें प्रथम रचना होते हुए भी कथामुक्तावली की भाषा में प्राञ्जलता है प्रौढता है, अलंकार प्राचुर्य है, सुगुम्फन है । ऐसा लगा की पद्य रचना करते – करते कवयित्री का ध्यान गद्य की और गया। "गद्य कवीनां निकषं वदन्ति" उक्ति पर विचार करके उसी के अनुरूप गद्य रचना करने की ठानी हो। कथामुक्तावली से यह स्पष्ट हो रहा है की कवयित्री की गती उस अच्छे फुटबॉल के खिलाडी की तरह है, जिसकी दोनो टांगें एक साथ समान गती से कार्य करती हो ।

कथामुक्तावली में पञ्चतंत्र आदि की लीक से हटकर कथा साहित्य को एक नया मोड देने का सफल प्रयास है । कथाओं

का आधार नया युग नई सभ्यता तथा नई चेतना है जिसमें राष्ट्र का तत्कालीन जीवन प्रस्फुटित हो रहा है । समाज की ज्वलंत समस्याओं का निदान देखना चाहे तो क्षमाराव की कहानी में सहज रूप में संभाव्य है ।

उनकी गद्य कथाओं कुछ की कथावस्तु तात्कालीन परिस्थितियों से संबंधित है और कुछ में सामाजिक रूढियों से त्रस्त नारी की या शोषित वर्ग की दुर्दशा और त्रासदी चित्रित है। इनकी अधिकांश कहानियां दु:खान्त है कुछ कहानियों की कथावस्तु राष्ट्रीय आंदोलन से भी संबद्ध है ।

कथामुक्तावली की १५ कथाएं धरती के कठोर यथार्थमय धरातल पर टिकी है । इनमें से कुछ दुखान्त प्रेम कथाएं है जहाँ प्रेमी प्रेमीका का मिलन बर्फ से दबकर मृत्यु के समय ही होता है । एक कहानी में अपने संतति का मुख देखने को तरस जाता है, क्योंकी उसने अपने पत्नी का परित्याग कर दिया था और पत्नी ने मरते समय यह प्रतिज्ञा की थी की उसकी संतान को उसके पिता को न दिखाया जाए । एक कहानी में एक मछुआरा साधु बन जाता है। बरसों जब वह नगर में आता है तो उसकी माँ उसे पहचान लेती है, पर पड़ोसीयों को जब मालूम पड़ता है की वह तो मछुवारा है तो माँ – बेटे दोनों का बहिष्कार कर दिया जाता है । खेटग्रामस्य चक्रोभ्दव: जैसी कहानीयों में गुजरात के खेड़ा जैसे गाँव में बस के पहुचने पर जो सामाजिक परिवर्तन होता है, उसका मनोरम चित्रण गुजरात के ग्रामीण परिवेश से संबध्द कथाओं मे है ।१

सन्दर्भ: १) कथामुक्तावली – सौभाग्यवती पण्डिता क्षमाराव

कथापञ्चकम्

पंडिता क्षमाराव की कथाओं में भारत के गौरव की धारा परिलक्षित होती है । इन की कुछ कहानियां तो उनके प्रिय अनुष्टुप् छंद में निबध्द है, जो कथापञ्चकम् में संकलित है । कथापञ्चकम् की कहानियाँ मूलतः अंग्रेजी भाषा में हैं उन्हीं का कवयित्री ने पद्यानुवाद कर दिया है । इन कहानियाँ का पद्यानुवाद करते समय क्षमाराव का विचार दो भागों में विभक्त है – प्रथम संस्कृत का प्रचार और प्रसार, व्दितीय नई टैकनिकयुक्त कथा का संस्कृत में अवतरण जो अब तक प्राय :अप्राप्य ही है । कथापञ्चकम् में पाच कथाएं है । इनमें कम से कम १४३ पद्य तथा अधिकतम् १९५ पद्यों में कहानी है । पांचो कहानियों में ८३२ पद्य है । प्रत्येक कहानी की पुष्पिका, कहानी का रहस्योन्मीलन करने में सहायक है।

१)बालिकोव्दाह संकटम्।

२)गिरीजाया: प्रतिज्ञा।

३)हरिसिंह:।

४)दन्तकेयूरम् ।

५)असूयिनी ।

'बालिकोद्वाह संकटम्' मेंऐसी नवयौवना की दु:खपुर्ण गाथा है जो जीवन के प्रभात में ही विधवा हो जाती है और समाज पुनर्विवाह सामाधान को तालों में बन्द ही रखना चाहता है । जिससे विवश हो उसे पारिवारिक जनों की दासता में ही स्वजीवन यापन करना पडता है।

सन्दर्भ: १)कथापञ्चकम् –सौभाग्यवती पण्डिता क्षमाराव

ग्राम ज्योति

भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में गुजरात के ग्रामीणो व्दारा किए गए त्याग और बलीदान की कथाएं ६०४ पद्दों में निबध्द है । प्रत्येक कथा एक आदर्श वाक्य से सम्पृक्त है ।

•रेवाया: कथा:- 'देशाभ्युदयसक्तानां तृणायधनसम्पद:।'

•कटु विपाका::-'परसेवानी निज व्देषी कुल -मृत्युर्न संशय:।'

•विरभा:-'दुर्जनोऽपि सतां सङ्गात् भवत्येव सज्जन:।'

१) रेवाया : कथा – यह कथा एक रेवा नामक कृषक महिला के त्याग की ऐसी कहानी है जिसमें लगान न देने पर उसके

घर को फूंक दिया है परन्तु राष्ट्र की पुकार 'लगान न देना' का ध्यान उसे है । उसके लिए धन, सम्पत्तियां तृण समान है ।

२) कटु विपाक - इस कथा में घर का एक आदमी सत्याग्रह का राही नही बनना चाहता, परन्तु अंत में प्रभावी होकार वह भी अपनी परिवार की भांति राष्ट्रभक्त बन जाता है ।

३) वीरभा - एक ऐसी देशभक्त महिला के जीवन गाथा है जिसने अपने प्राणो की चिन्ता न करते हुए राष्ट्रध्वज को अपमानित होनेसे बचाया और 'दुर्जनोऽपि सतां संगाद् भवत्येव न संशय:' को चरितार्थ किया ।

सन्दर्भ: १)ग्राम ज्योति - सौभाग्यवती पण्डिता क्षमाराव

**उपसंहार**

कहीं कश्मीर की उपत्यका में भेडों का चरना, छोटे बच्चों व्दारा उनकी देखभाल करना, तरू तले बैठे – बैठे घास के जूते बनाना, समाज सुधार की भावना भरना कवयित्री के प्रिय विषय रहे है, तभी तो स्त्री शिक्षा का अभाव, विधवा – विवाह - निषेध, पर स्त्री गमन, वेश्यावृत्ती आदि सामाजिक कलंको पर डटकर प्रहार किया है । आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से प्रेम – विवाह जैसी अद्भुत बातों पर जो भारतीय परिवेश के अनुकूल नही बैठ पाती ,करारा व्यङ्ग्य किया है । पंडित क्षमाराव की कहानियां आधुनिक लघुकथा का अच्छा निदर्शन सिद्ध होती है ।क्षमाराव के साहित्य में जन – जीवन के निकट पहुँचने के लिए छटपटाहट है । क्षमाराव की एक देन है आधुनिक नये शब्द का निर्माण । उसमें विषय की विविधता है और शैली भी शुद्ध और सुंदर है । क्षमाराव के रचना – विधान को देखकर कपिलदेव व्दिवेदी ने ठिक ही कहा है की, 'पण्डिता क्षमाराव में भाव है, सरल भाषा है, नैसर्गिक अलंकार है और युवति जनोचित कोमल हृदय का समन्वय है ।

**संदर्भग्रंथ सूची**

1) अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय के नक्षत्र – डॉ. दिप्ती कमल.
2) कथापञ्चकम् –सौभाग्यवती पण्डिता क्षमाराव.
3) कथामुक्तावली –सौभाग्यवती पण्डिता क्षमाराव.
4) ग्रामज्योती –सौभाग्यवती पण्डिता क्षमाराव.

# अभिनव मेघदूत की साहित्यिक समीक्षा

**वेदांजली वसंत काळे**

संस्कृत विभाग, सीताबाई कला,वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय,अकोला.

**सारांश**

*दूतकाव्य संस्कृत साहित्य का एक विशेष विभाग है। दूतकाव्य परम्परा में कालिदास विरचित 'मेघदूतम्' अत्युत्तम दूतकाव्य है। मेघदूत इस काव्य से प्रेरित होकर अनेक कवियों ने दूतकाव्यों की रचना की। संस्कृत दूतकाव्यों की परम्परा में कवि वसंत त्र्यम्बक शेवडे विरचित 'अभिनव मेघदूतम्' काव्य का अन्यतम स्थान है। मेघदूत काव्य के अनुकरण पर लिखे गये 'अभिनव मेघदूतम्' काव्य में १५८ श्लोक मन्दाक्रान्ता छन्द में है। दूतकाव्य परम्परा मेंशेवडे रचित अभिनव मेघदूत काव्य अपने ढंग का निराला काव्य है। प्रस्तुत शोधपत्र में आलोच्य काव्य में वर्णित काव्यसौन्दर्य का समीक्षण किया जायेगा।*

## प्रस्तावना

काव्यं लोकोत्तरमनुसरन् कालिदासप्रणीतं१

विद्वत्प्रीतिप्रदमभिनवं मेघदूतं व्यतानीत ।।

अर्वाचीन महाकवि वसंत त्र्यम्बक शेवडे ने महाकवि कालिदासद्वारा विरचित लोकोत्तर "मेघदूत" काव्य का अनुसरन करते हुए सहृदय के हृदय को आनन्दित करनेवाले 'अभिनव मेघदूतम्' खण्डकाव्य की रचना की।'अभिनव मेघदूतम्' को खण्डकाव्य,गीतिकाव्य,दूतकाव्य या सन्देशकाव्य के नाम से भी जाना जाता है। संस्कृत दूतकाव्य का बीज वैदिक साहित्य के ऋग्वेद के अग्निसूक्त२ में प्राप्त होता है। जिसका उत्तरोत्तर परिवर्तित रूप पुराण, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों में परिलक्षित होता है। दूतकाव्य परम्परा का सर्वोत्कृष्ट रूप 'मेघदूतम्' में परिलक्षित होता है जो परवर्ती दूतकाव्य का प्रेरणा स्त्रोत रहा।

मेघदूत का प्रतिस्पर्धि रूप अभिनव मेघदूत भी दो भागों में विभक्त है –पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ।इस काव्य का नायक स्वयं एक राजदूत है। काश्मीर नरेश अनन्तदेव उसे राजकार्य से मलयदेश में जाने का आदेश देता है।वहाँ उसे दीर्घकाल तक वास्तव्य करना पडता है। अपनी प्रिय पत्नी के विरह से वह व्याकूल हो उठता है। तब उसकी दृष्टि मेघ पर पडती है और उसको दूत बनाकर पत्नी के लिये अपना सन्देश प्रेषण करता है।

अभिनव मेघदूत में दूतकाव्यके सभी लक्षणों का समुचित सन्निवेश है। इसमें अन्तर्बाह्य दोनो प्रकृति का मनोज्ञ एवं मार्मिक रूप की प्रस्तुती है। यह काव्य विप्रलम्भ श्रृंगाररसपूर्ण है। महाकवि की शैली सरल,प्राञ्जल तथा प्रभावी और सूक्ष्म प्राकृतिक निरीक्षण शक्ति है। इससे उनकी काव्य-प्रतिभा एवं पाण्डित्य का ज्ञान होता है। इसमें गीतिकाव्य की सरसता, रसात्मकता, भावात्मकता, संगीतात्मकता, गीतात्मकता एवं सौन्दर्यत्मकता है। उपर्युक्त विशेषाताओं से मण्डित अभिनव मेघदूत का साहित्यिक अध्ययन उसकी उत्कृष्टता एवं नूतनता के रसास्वादन एवं अन्तर्दशन अपेक्षित है। इस दूतकाव्य के अनुशीलन से काव्यगत सौन्दर्य का बोध एवं ज्ञान के क्षेत्र में अभिवृध्दि हो सकेंगी।

**शोध के उद्देश –**

१) अभिनव मेघदूत के काव्यगत सौन्दर्य की आलोचना करना।

२) काव्य के श्लोकों का विश्लेषण करना।

३) काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों से इस सन्दर्भ में समीक्षा करना।

**काव्यस्वरूप –**

कवि शेवडे विरचित 'अभिनव मेघदूतम्' को खण्डकाव्य,गीतिकाव्य,दूतकाव्य या सन्देश- काव्य के नाम से भी अभिहित किया गया है। अतः यहॉ इनकी चर्चा अपेक्षित है। साहित्य- दर्पणकार विश्वनाथ खण्डकाव्य के सन्दर्भ में कहते है- खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारी च३। अर्थात् एक अंश का अनुसरन करनेवाला, यत् किञ्चित लक्षणो से हीन, संस्कृत पद्यों से निर्मित काव्य को खण्डकाव्य कहते है। अभिनव मेघदूतम भी काव्य के एक ही अंश का अनुसरण दिखाई देता है। इसलिये इसे खण्डकाव्य कहॉ जाता है।

**रस-**

कवि वसंत त्र्यम्बक शेवडे रचित अभिनव मेघदूत में विप्रलम्भ श्रृंगाररस है। विप्रलम्भ के भी चार भेद होते है- पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण।४ इनमें से इस काव्य का प्रवास भेद में समावेश होता है। 'प्रवास' का लक्षण इसप्रकार है-

प्रवासो भिन्नदेशित्व कार्यात्छापाच्च संभ्रमात्।५

तत्राङ्गचलमालिन्यमेकवेणीधरं शीरः।

निश्वासोच्छवारुदितभूमिपातनादि जायते।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार अभिनव मेघदूत के राजदूत को कार्यवश दूसरे देश जाने से यहा प्रवास विप्रलम्भ भेद परिलक्षित होता है।

**अलंकार –**

अलंकार काव्य का प्रमुख अंग होता है जो उसमें सौन्दर्य का आधान करता है। अतएव अभिनव मेघदूत का काव्यशास्त्रीय अध्ययन करते समय अलंकार का विवेचन करना आवश्यक है। कवि वसन्त शेवडे ने अपने इस काव्य को कमनीय कलेवर को और भी रमणीक बनाने के लिये यथावसर शब्दालंकार और अर्थालंकार का प्रयोग किया है।

तीरे तस्याः स्थितिमुपगतां कामनाकल्पवल्लिं६

देवी साक्षात्कुरु भगवतीं सन्नतो चन्द्रलाम्बाम्।

यहा देवी चन्द्रलाम्बा को कल्पलता की उपमा दी है।

दृष्टेर्यायात् तव विषयतां वल्लभा सा मदीया७

चान्द्री लेखा प्रतिपदि यथा दावतप्ता लता वा।।

यहा उपमेय-राजदूत पत्नी को उपमान-प्रतिपदाचन्द्रलेखा या दावतप्ता लता की उपमा दी है।

नक्तं यस्मिन् वल्लभिशिखरे रत्नदीपान् दधानाः८

स्वर्गस्त्रीणां भ्रममनुकलं कुर्वते शालभञ्यः।।

प्रासाद की पुत्तलियाँ स्वर्ग की स्त्रियों का भ्रम निर्माण करती है अतः यहा भ्रान्तिमान अलंकार होता है।इसप्रकार कवि ने काव्य की भाषाशैली में तथा भावों में उत्कर्ष लाने के लिये जो विविध अलंकारों का उचित समायोजन किया है उससे हृदय की आह्लादित क्षमता व्दिगुणित हो गई है।

**गुण-**

अभिनव मेघदूतम् खण्डकाव्य में विप्रलम्भ श्रृंगार रस का आधिक्य है और जहॉ विप्रलम्भ श्रृंगार रस होता है वहा माधुर्य गुण की अनुभूती होती है। माधुर्य काव्यगुणों में सर्वोच्च स्थानीय तत्व है। आचार्य मम्मट माधुर्य को परिभाषित करते हुये कहते है कि माधुर्य एक ऐसा आल्हाद है, जिसमें हृदय द्रवीभूत हो उठता है।९ अभिनव मेघदूत में हृदयदावक अनेक दृश्य है, जिन्हे देखकर हृदय विचल हो उठता है। उनमें उल्लेखनीय है –

दृष्ट्वा मेघं मनसि विमृशन यक्षसन्देशवृत्तं१०

हर्षोत्फुल्ला निजमयमपि प्रषयिषियन्नुजत्तम्।

आहुयोच्चैर्गगनसरणौ मन्थरं सञ्चरन्तं

नामग्राह विलयमसृण सादरं तं जगाद।।

इसप्रकार इसमें माधुर्य, प्रासादादि गुणों के उदाहरण अनेक स्थलों पर प्राप्त होते है।

**छंद –**

प्रवासवर्णन और विप्रलम्भ श्रृंगार रस के लिये मुख्य रूप से मन्दाक्रान्ता छंद का प्रयोग होता है। अभिनव मेघदूत इस खण्डकाव्य में भी विप्रलम्भ श्रृंगार मुख्य रूप से होने कारण इसका छंद मन्दाक्रान्ता है। मन्दाक्रान्ता का लक्षण इस प्रकार है –[११]

अर्थात् जिस पद में म गण ,(ऽऽऽ)भ गण ,(- - ऽ)न गण -) ,(- -त गण(-ऽऽ)त गण,(- ऽऽ)ग ग । इसप्रकार गणों (ऽऽ) ,की रचना होती है। तथैव ४७ वर्ण पर यति होती है और जिसमें १७ वर्ण होते है उसे मन्दाक्रान्ता कहते है। इस लक्षण के अनुसार अभिनव मेघदूत इस खण्डकाव्य में सभी पद्य मन्दाक्रान्ता छंद में रचित है। यथा

राजवन्तः सकलभुवनाभोगभूषायमाणाः।[१२]

एवं प्रवीणता में अनायास ही निखार आ गया है। मन्दक्रान्ता छंद को भी कवि ने सुन्दर रूप से उद्घाटित किया है। अतएव कवि एवं कृति दोनों प्रशंसनीय है। इस खण्डकाव्य में कवि ने

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| राज व | न्तःस क | लभु व | नाभो ग | भूषा य | माणाः |
| ऽ ऽ ऽ | ऽ - - | - - - | ऽ ऽ - | ऽ ऽ - | ऽ ऽ |
| म | भ | न | त | त | ग ग |

**निष्कर्ष -**

उपरोक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि'अभिनव मेघदूतम्' दूतकाव्य के समस्त उद्देश्यों को समाहित कर विलसित है। इसमें प्रकृति का रमणीय एवं मार्मिक प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। इस काव्य में विप्रलम्भ श्रृंगार का यथेष्ट परिपाक हुआ है। माधुर्य, प्रासाद गुणों का प्रयोग भी अनेक स्थलों पर परिलक्षित है। अभिनव मेघदूत में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा,अतिशयोक्ति, अनुप्रास आदि अलंकारों का सुन्दर वर्णन है। वैदर्भी रीति के वर्णन में उसकीविलक्षणता

अलंकार शास्त्रियों व्दाद्वरा निर्दिष्ट समस्त साहित्यिक मानकों का समावेश कुशलता पूर्व किया गया है।

**संन्दर्भ सूची-**


1) अभिनव मेघदूतम्-चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी१९९०,उत्तरमेघ-श्लोक ६६,पृष्ट क्र. १५६
2) अग्नि दूतं वृणीमहे शेतारं विश्ववेदसम् अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्। ।ऋग्वेद१
3) साहित्यदर्पणः-डॉ. सत्यव्रत सिंह चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी,२००७ षष्ठ परिच्छेद- कारिका ३२८ पृ.क्र.५५
4) स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात्। साहित्यदर्पण तृ.परि.कारिका१८७ पृ.क्र.२३२
5) साहित्यदर्पण तृ.परि.कारिका२०४पृ.क्र.२४३
6) अभिनव मेघदूतम् पूर्वमेघ-श्लोक३०,पृ.क्र.३०
7) अभिनव मेघदूतम् उत्तरमेघ-श्लोक४३,पृ.क्र.१३३
8) अभिनव मेघदूतम् पूर्वमेघ-श्लोक२९,पृ.क्र.२९
9) आल्हादकत्वं माधुर्यं श्रृङ्गारे द्रुतिकरणम्। काव्यप्रकाश-डॉ.श्रीनिवास शास्त्री, साहित्यभण्डार, मेरठ, १९९९, अष्टम् उल्लास, कारिका६८, पृ.क्र.४१७
10) अभिनव मेघदूतम् पूर्वमेघ-श्लोक३,पृ.क्र.३
11) Students Sanskrit English Dictionary, V. S. Apte.
12) अभिनव मेघदूतम् उत्तरमेघ-श्लोक०१,पृ.क्र.९१